खच्चर और आदमी

कहानी संग्रह

यशपाल

विप्लव कार्यालय, २१ शिवाजी मार्ग, लखनऊ

विप्लव प्रकाशन सं० ४२

प्रथम प्रकाशन फरवरी १९६५
चौथा संस्करण दिसम्बर १९७५

पुस्तक के प्रकाशन और अनुवाद के
सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरक्षित हैं ।

पन्द्रह रुपये

साथी प्रेस, लखनऊ में मुद्रित

सप्रयोजन कहानियों से
रस पाने वाले पाठकों के लिये—

यशपाल

विषय-सूची

वैष्णवी	मार्च १९६३	९
मक्खी या मकड़ी	अक्टूबर १९६३	२०
उपदेश	जून १९६३	२९
कलाकार की आत्महत्या	मार्च १९६३	३५
जीव दया	नवम्बर १९६३	५८
चोरी और चोरी	मार्च १९६३	६५
अश्लील !	जुलाई १९६३	७५
सत्य का द्वन्द्व	अगस्त १९६४	७७
खच्चर और आदमी	फरवरी १९६४	९५

भूमिका

गत पच्चीस वर्षों में अपने कहानी-संग्रहों के लिए 'भूमिका', 'आमुख' अथवा 'दो शब्द' के रूप में चौदह बार कुछ न कुछ कह चुका हूं। इन निवेदनों में अपनी कहानियों के सन्दर्भ में हिन्दी भाषा में कहानी के विकास, प्रयोजन तथा गतिविधि के सम्बन्ध में सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में, अपनी समझ और दृष्टिकोण स्पष्ट करने का यत्न करता रहा हूं। ऐसा अवसर प्रायः प्रति डेढ़-दो वर्ष पश्चात् आता रहा है और प्रत्येक बार अनुभव किया है कि हमारे साहित्य में कहानी का माध्यम, प्रयोजन और विधा दोनों ही दृष्टियों से पर्याप्त विकास कर रहा है।

आज अनुभव कर रहा हूं कि अपने साहित्य की कहानियों के सम्बन्ध में चौदह बार मन्तव्य प्रकट कर चुकने के बाद भी बहुत कुछ कहने की आवश्यकता है। इस समय हमारे साहित्य के कहानी क्षेत्र में पूर्वापेक्षा कहीं अधिक विचार-योग्य बातें—अच्छी कहानी, नयी कहानी, सचेतन कहानी, अकहानी तथा कहानी की पूर्णता, ग्राह्यता, सूक्ष्मता, प्रतीकात्मकता और सार्थकता के सम्बन्ध में प्रश्न और समस्याएं मौजूद हैं। इन प्रश्नों और समस्याओं से स्पष्ट है कि हमारे साहित्य में कहानी के माध्यम की प्रगति और विकास बहुत तीव्र गति से हो रहा है और इस विधा के प्रति रुचि और जागरूकता खूब बढ़ रही है। कहानी हमारे साहित्य का एक विकासशील अंग है, जिस के विषय में निर्णय दे डालना दुस्साहस है। इन प्रश्नों के समाधान की योग्यता का दावा मैं नहीं करता।

अपनी भाषा के साहित्य अथवा कहानी के क्षेत्र में मैं, अपने गत पच्चीस वर्षों के श्रम की थोड़ा-बहुत सार्थकता का विश्वास इस बात से पा सकता हूं कि सम्भवतः कहानी-कला के सम्बन्ध में जितनी चेतना हमारी भाषा के लेखकों में विकसित हो गयी है, उसे प्रोत्साहित करने में मेरे द्वारा लिखी कहानियों की सफलता-असफलता ने भी कुछ योग दिया होगा।

हमारी भाषा में कहानी की कला के विकास के लिए, उसे अधिक ग्राह्य,

सार्थक और उस की विधा को सूक्ष्म बना कर भी सबल बना सकने के लिए, उस में बोध और विधा की दृष्टि से कुछ नयापन ला सकने के लिए जो भी प्रयत्न हो रहे हैं मैं उन का स्वागत करता हूं। इस ऐतिहासिक अनुभव से मुंह नहीं मोड़ा जा सकता कि जिस स्थिति में विकास और परिवर्तन का प्रयत्न नहीं रहता वह स्थिति—चाहे वह कला की विधा हो अथवा ज्ञान, विकास या मान्यता हो—सड़ने और तिरोहित होने लगती है। नवीनता और परिवर्तन के लिए प्रयत्न यदि वह आत्म-प्रवंचना ही नहीं है, तो उसे नयी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिवर्तन की प्रवृत्ति मान कर उस का स्वागत किया ही जाना चाहिए। मुझे आशा है, मेरी पीढ़ी की उत्तम साहित्यिक रचनाओं की नींव बना कर नयी पीढ़ी, साहित्य के जो नये प्रकाश स्तम्भ खड़े करेगी वह हमारे समाज को कला के नये मार्गों के संकेत देंगे। इसे मैं अपनी पीढ़ी के साहित्यिक प्रयत्नों की सार्थकता ही समझूंगा।

इस संग्रह में संकलित कहानियां १९६२ से ६४ तक की रचनाएं हैं। इस काल में हिन्दी कहानी के विकास की दृष्टि से पारखी इन कहानियों का क्या स्तर निश्चित करेंगे, यह उत्तरदायित्व मैं उन्हीं पर छोड़ता हूं। मुझे इतना भरोसा है कि इन कहानियों को विधा तथा अभिव्यक्ति के प्रकार आदि के दृष्टिकोण से सम-सामयिक या 'नयी कहानी' की कोटि में न रख सकने पर भी भाव तथा कथ्य की दृष्टि से इन्हें रूढ़िग्रस्त कोटि में नहीं गिना जायेगा।

इस संकलन में प्रकाशित सभी कहानियां पत्र-पत्रिआओं में प्रकाशित हो चुकी हैं और सर्वसाधारण पाठकों की समझ की कसौटी पर रस तथा सार्थकता की दृष्टि से खरी समझी जा चुकी हैं। इन कहानियों के पत्रिकाओं में प्रकाशन के कुछ समय पश्चात्, आलोचक की दृष्टि से इस का पुनः सम्पादन करके, इन्हें अधिक मांजने और सुधारने का यत्न किया गया है। भरोसा है कि यह कहानियां हिन्दी की 'नयी कहानी' की कसौटी पर खरी न उतरने पर भी इन्हें हिन्दी कहानी के एक युग की रचनाओं में से पठनीय अथवा संग्रहणीय माना जा सकेगा।

२२ फरवरी, १९६४

खच्चर और आदमी

वैष्णवी

बस्ती मुहल्ले में अब भी जब-तब द्रौपदी की चर्चा हो जाती है। जब वह मुहल्ले से गयी, कई दिन उसी का नाम लोगों की ज़बान पर रहा। गरीब भोले पुरोहित के घर जन्म लेते समय उस ने किसी का ध्यान आकर्षित नहीं किया था। लड़की थी, लड़की के जन्म के समय कोई समारोह या प्रसन्नता का प्रदर्शन नहीं होता। कोई फूल की थाली तक नहीं बजाता। वह मां-बाप की पहली सन्तान भी नहीं थी। उस से पूर्व के दो भाई मौजूद थे। जन्म से ही वह नगण्य थी। उसे कोई उस के पूरे नाम से भी नहीं पुकारता था। नारी शरीर के ऐसे नगण्य अंकुर को महाभारत की प्रातः स्मरणीय नायिका, पंच-कन्याओं में से एक का नाम दे देना, भोले पुरोहित की भोली विद्रूपमय स्पर्धा ही जान पड़ी थी। उस अकिंचन् कन्या के लिए इतना बड़ा नाम किसी ने स्वीकार न किया। पड़ोसी तुतलाते बच्चों के मुख से उस के लिए उपयुक्त नाम स्वतः ही प्रचलित हो गया—'पोदी !'

पोदी के पिता, भोले पुरोहित का निर्वाह देवी-देवताओं के भोग के अंश और भक्तों के दान-पुण्य पर ही था। उन के और उन की पुरोहिताइन के लिए पोदी से पूर्वागत दो लड़कों के पालन का बोझ ही क्या कम था। लड़कों से आशा भी थी कि वे बुढ़ापे की लकड़ी बनेंगे। पोदी के लालन-पालन और संवर्धन में उत्साह किस आशा से होता ! उस ने जन्म ही माता-पिता को कन्यादान का पुण्य अर्जन करने का अवसर देने और उस दान का पुण्य निबाह सकने की चिन्ता देने के लिए लिया था।

पोदी ने कन्या का जन्म पाकर माता-पिता को तो कन्यादान के पुण्य का अवसर दिया परन्तु स्वयं उस ने कन्या का जन्म अपने गत-जन्मों के पापों के भुगतान के लिए ही पाया था। भोले पुरोहित को, पोदी के रूप में कन्यादान

का अवसर देना भी दैव की एक छलना ही थी। पोदी का कन्यादान करके भी भोले उस से पीछा नहीं छुड़ा सके।

भोले पुरोहित ने रीति और परम्परा के अनुसार लड़कों के विवाह, उन के किशोरावस्था लांघने से पूर्व ही कर दिये थे। छोटे लड़के का विवाह सम्पन्न करने के लिए बदले में पांच वर्ष की पोदी का कन्यादान कर दिया था। पोदी के विवाह को डेढ़ वर्ष ही बीता था। लड़की अभी बस्ती मुहल्ले की गलियों में एक हाथ से घोंसले जैसे अपने सूखे केश खुजलाती और दूसरे हाथ से सदा बहती नाक पोंछती, केवल झगला मात्र पहने, गली के बच्चों को आंखमिचौली और लट्टू खेलते देखती थी। उस समय पोदी की ससुराल, 'दोमरा' वासियों के गत जन्म के पापों के फलस्वरूप गांव पर प्लेग की महामारी का बज्र आ गिरा। पोदी का आठ वर्ष का पति गनेश अल्पायु में ही चल बसा।

पोदी ने गत जन्म में क्या अनाचार, अन्याय और अपराध किये थे, इस पर न तो सामाजिक ज्ञान के पण्डित प्रकाश डाल सके, न आध्यात्मिक ज्ञान के। पोदी को अभी न अपने शरीर की सुध थी, न वह दो बात ही कर सकती थी। अनाचार, अपराध के फल और उत्तरदायित्व की बात वह क्या समझती? भोले पुरोहित के द्विज समाज ने, अपनी प्रथा और रीति को दैव का विधान बता कर पोदी को हिन्दू-वैधव्य का आजन्म दण्ड दे दिया। हिन्दू वैधव्य है, नारी शरीर और नारी का स्वभाव और प्रकृति पाकर, नारीत्व के स्वभाव और प्रकृति के अधिकारों से वंचित हो जाने, निरन्तर अपनी ही प्रकृति से लड़ने, अपने में जलते रहने, मरते रहने का धर्म निबाहने का दण्ड। पोदी तो अपने दण्ड और दुर्भाग्य को जान भी न पायी, न उस के लिए रोयी। लड़की आंखें और नाक तो मलती ही रही लेकिन वैधव्य के शोक से नहीं, बाल शरीर के कष्टों और आदत के कारण। भोले पुरोहित और पोदी की मां ने अपनी शिशु कन्या के वैधव्य के आघात से सिर पीट लिया। अपने समाज की रीति को दैव का विधान मान कर चुप रह गये।

पोदी के विधवा हो जाने से पूर्व उस की मां लड़की का मुंह धोकर कभी काजल भी लगा देती। महीने-पखवाड़े लड़की के सिर से जुएं बीन कर उस का सिर धो, कड़वा तेल चुपड़ उस के केशों को बालिस्त भर की चुटिया में गूंथ देती। कभी पोदी मुहल्ले की दूसरी बच्चियों की हिरख से जिद कर बैठती तो पैसे दो-पैसे की कांच की छोटी-छोटी चूड़ियां भी उसे पहना देती। लड़की

के विधवा हो जाने के बाद यह सब अनावश्यक और असंगत ही नहीं, अधर्म भी हो गया था। मां ने पोदी की रंगीन कांच की चूड़ियां स्वयं तोड़ दी थीं। फिर कभी पोदी अपनी उम्र की लड़कियों के हाथों में चूड़ियां देख कर, चूड़ियों के लिये जिद करती तो मां अपना सिर पीट लेती और बेटी का सिर झिंझोड़ देती। दो-चार बार मार खाकर शिशु पोदी समझ गयी और चूड़ियों की इच्छा करने से डर गयी। लड़की का ध्यान और रुचि उस ओर न जाना ही उचित था। वह जन्म भर के लिये कलमुंही, रांड और असगुनी हो गयी थी।

पोदी माता-पिता के लिये जीवन भर का बोझ बन गयी थी। असगुनी लड़की की गुड़ियों और घरोंदों में बालिका-सुलभ रुचि से मां खिन्न हो जाती। झुंझला कर लड़की को चौके-चूल्हे या दूसरे काम में मरने को कह देती। पुरोहिताइन निर्वाह के लिये मुहल्ले के दो-एक भले आदमियों के घर में रसोई का काम लिये रहती थी। पोदी को चीज-बस्त उठा-पकड़ा देने अथवा झाड़-बुहार में सहायता के लिये साथ ले जाती।

पोदी घर और बाहर सभी जगह अनावश्यक और तिरस्कृत थी। गली-मुहल्ले के बड़े-बूढ़े बताते हैं—आठ-दस वर्ष की रांड पोदो उपेक्षित और निरपेक्षित-सी भोले पुरोहित के दरवाज़े पर और गली में बनी रहती थी; मुहल्ले के लावारिस कुत्तों-पिल्लों की ही तरह, जिन्हें लोग घृणा से दुत्कारते और दया से सहते रहते हैं। चील के घोंसले से रूखे, बिखरे बाल, रूखे सांवले चेहरे पर आंखों और नाक के मैल की घसीटें, कन्धों पर किसी भाई का उतारा हुआ फटा झगला, कमर पर कभी चिथड़ी धोती का टुकड़ा, कभी भाइयों का फटा जांघिया और कभी कुछ भी नहीं। रांड बालिका पोदी तितली के अंडे से निकले कीड़े (लार्वा) की भांति उपेक्षित और घिनौनी थी, जिसे कोई जिलाने-पालने का यत्न नहीं करता। वह कीड़ा अपने ही जीवट से जो पाता है, उसे चाट-हजम कर, पाला-घाम सहकर तितली बन जाता है और पर लग जाने पर उड़ने लगता है, तब सब उसे कौतूहल से देखना चाहते हैं। ऐसे ही समय आने पर पोदी ने यौवन के पर निकाले और मोहक तितली की भांति उड़ने लगी। वह गली-मुहल्ले से पायी उपेक्षा का बदला लेने के लिये लोगों की मुसीबत बन गयी।

पोदो १२-१३ की आयु में अपनी स्थिति और चारों ओर की परिस्थिति समझने लगी थी। वह लोगों की आंखें पहचानने और अपने आप को संभालने-

दिखाने लगी। देखते-देखते वह कुछ से कुछ हो गयी, जैसे कड़ा, कच्चा-कसैला फल समय आने पर गदरा कर कोमल और मधुर हो जाता है, रंग बदल लेता है और हठात् दृष्टि और मन को खींचने लगता है।

पोदी का शरीर आयु से भरने पर उस की सूझ-समझ भी पैनी हो गयी। वह अपनी स्थिति और भविष्य को समझ गयी थी। समाज या भाग्य ने उस के लिये सब कुछ निषिद्ध कर दिया था सही परन्तु अनुभव करती थी कि संतोष पा सकने की इच्छा और सामर्थ्य तो उस से कोई छीन नहीं सका था। पोदी अपनी स्थिति का ध्यान रख, जनदृष्टि और जनमत से सतर्क होकर निबाहने का यत्न करने लगी।

बस्ती मुहल्ले के समीप ही कन्या-पाठशाला थी। मुहल्ले की कई लड़कियां पाठशाला जाती थीं। मुंशी जी के घर की गिनती मुहल्ले के भले और सम्भ्रान्त परिवारों में थी। कई वर्ष पहले मुंशी जी की बड़ी बहू दो बच्चों की मां बन कर विधवा हो गयी थी। विधवा बहू अपने सिर पर समय का बोझ और घर पर अपना बोझ हल्का कर सकने के लिये कन्या-पाठशाला में अध्यापिका का काम करने लगी थी। पोदी चौदह वर्ष की हो चुकी तो उसे भी ख्याल आया—हाय, उस ने भी कुछ पढ़-लिख लिया होता तो उमर काटने का सहारा हो जाता पर अब समय निकल चुका था। चौदह वर्ष की ऊंटनी पोदी को पढ़ना-लिखना सीखने के लिये छः-सात वर्ष की बच्चियों में कौन बैठने देता! वह स्वयं भी उन में कैसे जा मिलती! पढ़ना-लिखना सीख सकने की उमर में तो वह अपने और यजमानों के घरों में, रसोई और चौके में मां की मदद कर रही थी।

पोदी के शरीर पर डकैत नजरों से छिपाने योग्य कुछ हो गया तो फटी-चीथड़ा चोली और तार-तार छलनी धोती से काम कैसे चलता? दर्शनीय को गोपनीय रखना आवश्यक होता है। पोदी भी चाहभरी नज़रों की चुभन अनुभव कर सावधान होने लगी। वह मां को समझाने-सिखाने योग्य हो गयी थी, अब रक्षा के लिये मां की उंगली पकड़ कर उससे क्या चिपकी रहती? प्रौढ़ा मां के शिथिल हाथ जितने समय में एक यजमान की रसोई निपटाते, उतने में पोदी कमर में फेंटा कसे, चंचल नेत्रों और चंचल हाथों से दो घरों को निपटा, रिझा सकती थी। वह मां से पृथक, अकेली जहां-तहां कुछ काम करने लगी। ढंग से पहनने-ओढ़ने की उसे जरूरत थी और घर की जरूरत में भी

सहायता कर देती थी भोले पुरोहित को प्रायः विजया का सहारा हो गया था।

पोदी चौदह की थी तभी मां से कद निकाल चुकी थी। बेटी कद में ही क्या, सभी बातों में मां से बढ़ गयी थी। मां की अपेक्षा निडर हो, चतुराई से बात कर सकती थी। मां की अपेक्षा यजमानों की बात और संकेत को अधिक समझ लेती। अच्छा रांध लेती। पहनने-ओड़ने का अधिक अच्छा ढंग जान गयी थी। मां केवल धोती में ही सिमटी-सिमटी प्रौढ़ा हो गयी थी। पोदी ने भले घर की बहू-बेटियों की देखादेखी पेटीकोट पर धोती बांधना और खुले गले की बण्डी पहनना सीख लिया। भले घरों की बहुओं-बेटियों को देख कर धोती के आंचल को अधिक सुघड़पन से कंधे और आधे सिर पर रखने-खिसकाने का ढंग उसने सीख लिया। उसे अपनी उम्र की लड़कियों-बहुओं की तरह रंगीन, चटकीली धोती पहनने की साध होती तो निन्दा और विरोध से भर्त्सना होने लगती। उसकी धोती सफेद रहने पर भी अच्छी शोख किनारी-दार और सुथरी, चुन्नट पड़ी हुई उजली रहती। वह माता-पिता और मुहल्ले वालों के सन्तोष के लिए वैधव्य के नियम-व्रत और देवी-दर्शन पूजन अधिक चर्चा और ध्यान से निबाहने लगी।

एक समय पोदी मुहल्ले की सबसे अकिंचन, कीड़े की तरह कातर और उपेक्षित प्राणी थी। अब वह मुहल्ले की तितली बन कर, बड़े मिश्रा जी, रग्घू लाला और मुंशी जी से भी अधिक चर्चा का विषय बन गयी। प्रकट में पोदी के कारण झगड़े, उसकी चर्चा और अपवाद ज्यों-ज्यों बढ़ने लगे परोक्ष में उसके याचकों की संख्या और उसके हृदय में अपने आकर्षण और सामर्थ्य का आत्मविश्वास भी बढ़ता गया।

लोगों ने पोदी के सामर्थ्य की सराहना में उसका वास्तविक नाम उसे लौटा दिया। वह फिर द्रौपदी पुकारी जाने लगी। यह परिवर्तन उसके व्यक्तित्व के प्रति आदर के कारण नहीं, अपितु उपालम्भ था। द्रौपदी को ले कर मुहल्ले और पड़ोस के मुहल्लों के पाण्डवों और कौरवों की गिनती होती रहती थी। द्रौपदी के प्रसंग से बांकों और छैलों को युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, दुर्योधन, दुश्शासन और कीचक की उपाधियां बांटी जातीं।

द्रौपदी अपनी परिस्थितियों, अपने दुर्भाग्य और सामर्थ्य सभी के प्रति समान रूप से सचेत थी। अपने लिये सब निषेधों और दुर्भाग्य के साथ संतोष

क़ी संभावनाओं का समन्वय निबाहना सरल काम नहीं था । समाज द्वारा दिये दुर्भाग्य और निषेध से प्रकट विद्रोह किये बिना भी संतोष का अवसर पा सकने के लिये नीति और आवरण आवश्यक थे । इसीलिये उसकी ख्याति और अपवादों के प्रसार के साथ उसके चातुर्य, पूजा-व्रत और नियम के कर्मकाण्ड का व्यवहार भी बढ़ता जा रहा था । उसके कारण मुहल्ले में कई काण्ड हो चुके थे । पड़ोस के मुहल्लों से भी झगड़ा हो चुका था । वह बस्ती मुहल्ले के जवानों में कलह का, स्त्रियों में ईर्ष्या का, प्रौढ़ों में चिन्ता का और अपने माता-पिता के लिये भयंकर संकट का कारण बन गयी थी परन्तु वह चातुर्य, धैर्य और सतर्कता से निबाहे जा रही थी ।

बस्ती मुहल्ले के सब लोग मिलकर द्रौपदी को जितना जान सके थे, उतना वह उन सब को जान गयी थी । वह खूब जानती थी कि उसके प्रति अधिकांश लोगों का असंतोष और आक्रोश उसकी कृपा न पा सकने के कारण ही था । उसे भरोसा था, एक संकेत से जिसे चाहे चुप करा देती, जिसे चाहे अंगूठा दिखा देती । वह किस के आगे हाथ फैलाती थी, जो किसी से दबती । दबती थी तो केवल अपने दयनीय माता-पिता की इज्जत और लोक-व्यवहार के ख्याल से । उसके दोनों बड़े भाई घर की कृच्छ्रता से बचने के लिये जीविका की खोज में दूर-दूर नगरों में चले गये थे । उसे घर में ही रहना था, इसलिये मां-बाप को विश्वास से संतुष्ट और चुप रखना आवश्यक था ।

द्रौपदी १३-१४ की थी, तब उसकी मां, बेटी के सम्बन्ध में कोई अपवाद सुनती तो बौखला उठती थी । लड़की को रांड, कलमुंही कहकर, उसका झोंटा पकड़कर, उसका कलेजा चीर कर खून पी जाने, मार देने, गाड़ देने की धमकियां देती थी । भोले पुरोहित जवान बेटी पर हाथ नहीं उठा सकते थे, बकने-झकने लगते या लज्जा-अनुताप में कुएं में कूद पड़ने या ज़हर खा लेने का निश्चय प्रकट कर आंसू बहाने लगते । परन्तु अब द्रौपदी की ज़बान खुल गयी थी । वह ऊंचा बोलना सीख गयी थी । वह विरोध में ललकार उठती— आरोप लगाने वालों में दम है, सच्चाई है तो देवी के सामने कहें, गंगाजली उठायें, हाथ पर आग रखकर बोलें । वह स्वयं आग हाथ पर रख लेने या हाथ आग में देने के लिए तय्यार हो जाती । कभी धोती के फन्दे से फांसी लगा लेने, नदी में डूब मरने या विष खाकर सो जाने की धमकी देकर, मां बाप को चुप करा देती ।

ऐसा भी अवसर आ जाता कि द्रौपदी अपने ऊपर आरोप का समाधान कठिन या असम्भव पाती तो वह घण्टे दो घण्टे के लिये देवी के ध्यान में मूर्च्छित हो जाती, कभी देवी को साधुओं के परित्राण और पापियों के विनाश के लिये गुहारने लगती। इस पर भी लोगों का समाधान न होता तो उस पर देवी आ जाती। वह केश फैला, सिर और कन्धे हिला-हिला कर हुंकारने लगती और मिथ्या आरोप लगाने वालों को भस्म कर देने या चण्डी बनकर उन्हें निगल जाने के लिये ललकारने लगती।

द्रोपदी ने समझ लिया—सामान्य जवान लड़कियों-स्त्रियों के लिये भाग्य से जो सुलभ होता है, वह उसके लिये नहीं। उसका निर्वाह असामान्य बनकर ही हो सकता था। एक संध्या वह देवी की पूजा के लिये घाट की ओर चली गयी थी। रात क्य", वह दूसरे दिन चौथे पहर से पहले न लौट सकी। जब लौटी तो उसकी आखें लाल थीं, गले में तुलसी की माला, माथे और गले में चन्दन पोते थी। मुहल्ले के अनेक स्त्री-पुरुष उसके द्वार पर इकट्ठे हो गये थे। द्रौपदी ने निधड़क घोषणा कर दी कि वह वैष्णवी की दीक्षा लेकर आयी थी। उसे सामान्य स्त्रियों के अवसर सुलभ नहीं थे तो क्या उनकी तरह रोक-टोक से केवल सहमती ही रहती। रोक-टोक से छट जाने और असामान्य व्यवहार का अधिकार अपना लेने के लिये वह वैष्णवी बन गयी और वैसा ही व्यवहार करने लगी थी। जब चाहती, दिन-रात में उठकर मन्दिर, घाट जहां-तहां चली जाती। बस्ती मुहल्ले के लोग द्रोपदी के वैष्णवी धर्म पर कनखियों से मुस्कराते और कहकहे लगाते रहते परन्तु भोले पुरोहित और द्रौपदी की मां वैष्णवी बेटी पर विश्वास कैसे न करते ? क्या देखते नही थे कि उनकी वैष्णवी बेटी न केवल एकादशी प्रत्युत पूर्णिमा और अमावस्या को भी देवी के चरणामृत और प्रसाद के अतिरिक्त और कुछ ग्रहण नही करती थी। महाभारत की द्रौपदी की ही तरह उसके सत के प्रभाव से घर में आटा, चावल, दाल के घड़े कभी सूने नहीं हो पाते थे।

वैष्णवी द्रौपदी १७ वर्ष की आयु तक अपने सरल, भोले पिता और माता के लिये बहुत सतर्कता और यत्न से अपवादों के विरोध में विश्वास का अवलम्ब बनाये रखने में सफलता पाती रही परन्तु उसे भी तो कोई अवलम्ब चाहिये था जो पिता-माता नहीं, जाति-बिरादरी और कोई भी व्यक्ति मुहल्ले में नहीं दे सकता था। ऐसे अवलम्ब की आशा उसे किसी एक व्यक्ति ने दी

थी। उस व्यक्ति ने उसे जीवन भर के लिये अपनी बनाकर बम्बई ले जाने का आश्वासन दिया था। वैष्णवी को छोटे-मोटे क्षणिक अवलम्बों की कमी नहीं थी। उन्हें वह अपने माता-पिता और मुहल्ले के लोगों के परोक्ष में अनेक बार पकड़ती-बदलती रही थी। उस अस्थिरता से उसका मन विरक्त हो गया था। वह अपने चारों ओर चाह की खोचों से ऊब गयी थी। पूरी बस्ती-मुहल्ले के जवान उसे चाहते थे, वैसे ही जैसे धरती या छत पर पड़े अरक्षित भोजन के ग्रास को सब कौवे चाह से झपट लेना चाहते हैं और उसके लिये आपस में लड़ते हैं। वह बकोटने वाले हाथों से ऊब कर रक्षा करने वाली बांहों के लिये तड़प उठी थी। वह अपनी गर्दन सदा के लिये किसी कन्धे पर रख देना चाहती थी परन्तु माता-पिता के घर में रहकर तो ऐसा कर सकना सम्भव नहीं था।

द्रौपदी के दोनों बड़े भाई माता-पिता को असहाय छोड़कर जीविका की खोज में पहले ही जा चुके थे। मां बुढ़ापे और बाई के दर्दों से अपंग हो बेटी के भरोसे शिथिल हो गयी थी। बूढ़े पुरोहित पिता के घुटनों में भी अब पुरोहिताई के लिये मुहल्ले-मुहल्ले घूमते फिरने का दम नहीं रहा था। द्रौपदी ही उनका सहारा थी। वह अवलम्ब पाने के लिये एक बार अपना घर छोड़ देने पर माता-पिता की चिन्ता से भी फिर घर नहीं लौट सकती थी। अपने पीछे माता-पिता की दुरावस्था की आशंका से उसका मन विह्वल हो जाता। कभी माता-पिता के सम्मुख आंखों में आंसू भर कह बैठती—"यदि मैं न रहूं, मैं मर जाऊं तो तुम्हारा क्या होगा ?"

एक संध्या वैष्णवी द्रौपदी घाट के मंदिर में जप करने के लिये गयी तो फिर नहीं लौटी। तीन दिन और रात बीत गये, वह नहीं लौटी। बस्ती, मुहल्ले में ब्राह्मण की विधवा लड़की के भाग जाने के अपवाद का कुहराम मच गया। लोग वैष्णवी के मन्दिर में समाधि लगाकर अन्तर्धान हो जाने की चर्चा कर मुस्कराने और कहकहे लगाने लगे। मुहल्ले के मसखरे आकर भोले पुरोहित से पूछ जाते कि वैष्णवी तीर्थ ब्रत को गयी है ? किस तीर्थ ब्रत के लिये ? कोई कह जाता—वैष्णवी सिद्धि प्राप्त कर अन्तर्धान हो गयी। कोई कह जाता—वैष्णवी योगिनी बन कर आकाश में उड़ गयी है। कोई कहता—वैष्णवी ने जल समाधि ले ली है। बेटी के वियोग से अधीर भोले पुरोहित के लिये सिर उठाना, किसी से आंख मिलाना, घर से बाहर निकलना कठिन हो गया।

वैष्णवी मुहल्ले के अनेक लोगों की एकान्त में कृपा-याचना को अंगूठा दिखा चुकी थी। अनेक को उनकी कुत्सित अभिलाषा का भेद खोल देने की धमकी से दुत्कार चुकी थी। ऐसे लोग तिरस्कार में दांत पीस कर और ईर्ष्या से जलकर मन मारे बैठे थे। मुहल्ले में प्रचार हो गया कि वैष्णवी एक विधर्मी के साथ भाग गयी थी। अनेक प्रत्यक्ष गवाहियां भी सामने आने लगीं। वैष्णवी से प्रतिकार चाहने वाले लोग उसकी अनुपस्थिति में अपने धर्म पर आघात और मुहल्ले पर कलंक का बदला लेने क लिए हुंकार उठे। मुहल्ले के धर्म, आचार और सम्मान की रक्षा के लिए पुलिस-थाने में रपट लिखाने की पुकार उठी। वैष्णवी तो उनके आक्रमणों की पकड़ से जा चुकी थी। उन लोगों की प्रतिहिंसा की चोट भोले पुरोहित और वैष्णवी की मां ही पर पड़ सकती थी।

पुलिस और थाने तक पहुंचने के लिए हैसियत और दम चाहिए। मुहल्ले के धर्म, आचार और सम्मान की रक्षा के लिए उत्तेजित लोग, धर्म-रक्षा के इस कार्य में सहायता के लिए बड़े मिश्रा जी के यहां पहुंचे। बड़े मिश्रा जी ने निकम्मे भोले पुरोहित पर लड़की को आवारा बन जाने देने के लिये क्रोध प्रकट किया, अनेक अभिशाप दिये, बोले—"उसकी करनी स्वयं उसके सामने आयेगी। अब उसे कौन अपने द्वार पर आने देगा? बामन पुरोहित बना फिरता है, हमारे घर की ड्योढ़ी पर आया तो साले की टांग तुड़वा देंगे। कमबख्त बूढ़ा-बुढ़िया मरेंगे तो उन्हें कंधा देने वाला नहीं मिलेगा···।"

मुहल्ले के लोग, राजद्वार तक पुकार पहुंचा सकने में सहायता के लिये रग्घू लाला के यहां पहुंचे। रग्घु लाला कर्मकाण्ड में विशेष निष्ठा रखने वाले भक्त थे, खिन्न होकर बोले—"भाग गयी, भागकर कहां जायेगी?" उन्होंने आकाश की ओर संकेत किया, "वह देखने वाला है, उससे भाग कर कहां जायेगी? चुड़ैल ने अपने पिछले जन्म के पापों से कंगाल, भिखमंगे के घर जन्म पाया, सुधि संभालने से पहले रंडापा पाया, इस पर भी चुड़ैल कुछ नहीं समझी। अब यह पाप कर रही है तो इसका भी फल पायेगी। किसी बेसवा के घर जन्म पायेगी। हरामजादी बेसवा वैष्णवी बनती थी, अच्छा हुआ हमारे मुहल्ले से कलंक गया।"

मुहल्ले के धर्म, आचार और सम्मान की रक्षा के लिये व्याकुल लोग, बढ़े मिश्रा जी और रग्घू लाला की उदासीनता से निराश हो मुंशी जी के यहां पहुंचे। मुंशी जी से उन्हें बहुत आशायें थीं। मुंशी जी अपने घर में विधवा

बहू और जवान लड़कियां होने के कारण मुहल्ले के आचार-व्यवहार के विषय में सतर्क रहते थे। मुंशी जी पहले भी वैष्णवी की उच्छृङ्खलता और पाखण्ड के प्रति खिन्नता और पुरोहित-पुरोहिताइन की शिथिलता के प्रति ग्लानि प्रकट करते रहते थे, बोले—"हां, हां, बेईमान, आवारा छोकरी लौट कर आये तो हम उस की हड्डियां तोड़ कर रख देंगे। अरे भाई, सज़ा तो उसी आवारा, बेहया को मिलनी चाहिये। उस अन्धे अपाहिज पुरोहित को तो हम कब से समझाते रहे। ऐसे मूर्ख लोगों के साथ और क्या होता। जान-बूझ कर अन्धे बने थे। जवानी से व्याकुल लड़की बेपगही हो, खेत-गांव, जहां-तहां मुंह मारती फिरती थी। ये उसे वैष्णवी भक्ति माने बैठे थे। उसे कहीं बसा देने में इन की जाति जाती थी। अब बन गयी इन की जाति और फल गया इन का धर्म! मरने दो कम्बख्तों को। अब घुटनों में सिर देकर रोयेगा अपनी करनी पर। सज़ा तो उसे भगवान दे रहे हैं, उसे और क्या सजा दें!"

मुंशी जी को घेरे भीड़ में से कोई बोल उठा—"सो तो हो ही रहा है। जब से लौंडिया गयी है, चार दिन हो गये, बूढ़ा, निर्जल, निराहार, ज्वर में खाट पर पड़ा है। बुढ़िया भी रो रही है।"

मुंशी जी ने सुना तो उनके होंठ खुले रह गये और आंखें नम हो गयीं लेकिन धमकाकर बोले—"देखते हैं चल कर। किसे डरा रहा है निराहार से, पोंगा बामन! साले को मुहल्ले से घसीटकर बाहर फेंक देंगे।" मुंशी जी भीड़ के आगे-आगे भोले पुरोहित के घर की ओर चल दिये।

मुंशी जी ने भोले पुरोहित के द्वार पर पहुंचकर अपने साथ आयी भीड़ को बाहर ही रोक दिया। कोठरी का द्वार नीचा था, गर्दन झुकाकर प्रविष्ट हुये। पुरोहित की खटिया पर बैठ कर धीमे स्वर में बोले—"यह क्या, कैसे पड़े हो! पंडित, किस बात के लिये दुखी होते हो! बिटिया तुम कहते थे, वैष्णवी थी। वह वैष्णव धर्म पूरा करने के लिये, तीरथ-बन में जोग रमाने चली गयी तो दुख किस बात का! तुम भी क्या पोंगे हो, लुच्चे-लंगारे, लोक-निन्दकों की बातों पर जाते हो। जानते तो, सच्चे वैष्णवों, साधु-सन्तों का ठिकाना घर-गृहस्थ में नही, तीरथ-तपोवन में ही होता है। अरे तुम खुद ही कहते थे, बिटिया सिद्ध हो गयी थी तो फिर उसे घर-बार का मोह क्या होता! हम-तुम उसे क्या समझ पाते! जिसने भगवान से लौ लगा ली, उसे संसार से क्या! तुम खुद कहते थे भक्तिन थी, जोग रमाने चली गयी। भैया, ऐसी भक्ति जिस-तिस के वश की

थोड़े ही हो सकती है। अरे, तुम तो पुण्यात्मा हो। ऐसी भक्तिन सन्तान पाकर तुम्हारा जन्म सफल हो गया। तुम्हारे पुरखे तर गये। लोगों का क्या है, किसी का जस-पुण्य बढ़ते थोड़े ही देख सकते हैं !"

भोले पुरोहित, मुंशी जी से वैष्णवी बिटिया के सिद्ध और भक्तिन होने के सम्मान की बात सुनकर, बांह का सहारा ले खटिया पर से उठ बैठे। मुंशी जी के चेहरे की ओर सजल आंखें उठा कर बोले—"ठीक कहते हो मुंशी जी, आप ही ठीक कहते हो। बिटिया घर से चली गयी, मान लो उसने बुरा किया पर थी सच्ची वैष्णवी भक्तिन। देखो मुंशी जी, वह अनागत जानती थी। चार दिन पहले ही उसने उदास हो उसने कह दिया था—'तीन दिन बाद घर का एक आदमी नहीं रहेगा।' अनागत जानती थी न ! दूसरा तो अनागत नहीं जान सकता।" भोले पुरोहित की आंखों में आंसू और चेहरे पर संतोष की आभा चमक उठी।

मुंशी जी पुरोहित की पीठ पर थापी देकर हंस दिये—"हां, हां और क्या !" उन्होंने पुरोहित की बांह पकड़ कर खाट से उठने के लिये सहारा दिया और बोले, "जाओ, नहाओ-धोओ, खाओ-पिओ। सब 'उस' की इच्छा से होता है। 'उस' का भरोसा करो।"

मक्खी या मकड़ी

लोग-बाग कहते हैं, समाज और व्यवस्था में धांधली बढ़ती ही जा रही है और उसके कारण निर्वाह असम्भव होता जा रहा है। धांधली के मकड़े समाज और व्यवस्था पर अपना जाल फैलाते जा रहे हैं। भले लोग इस जाल में पड़ कर असहाय मक्खियों की तरह छटपटाते दम तोड़ते रहते हैं परन्तु वास्तविकता है कि जो मक्खियां धांधली के मकड़-जाल में फंसती हैं, वे धांधली के रस के प्रभाव से स्वयं भी मकड़े बन जाती हैं और धांधली के जाल को बढ़ाने लगती हैं।

सुबह का नाश्ता जल्दी में समाप्त कर लिया। प्रयोजन था, कई दिन से मन में संजोयी कल्पना के ताने-बाने को रचना का रूप दे डाला जाये। एकान्त में निर्विघ्न काम कर सकने के लिए कमरे का गली में खुलता दरवाजा मूंद लिया। मेज़ पर झुक कर कलम उठायी ही थी कि बाहर के दरवाज़े के किवाड़ों पर निस्संकोच थपकी सुनायी दी। दांत पीस लिये, तब तक पुकार सुनायी दी "……जी हैं ?" स्वर परिचित था।

"मैं।"

विवशता से गहरा श्वास लिया—"आओ, आओ, खोलता हूं।" कलम को टोपी चढ़ा मेज़ पर रख कर खीज से कुर्सी को पीछे ढकेला और दरवाजा खोल दिया। आगन्तुक के प्रति शिष्टाचार से पूछा—"कब आये ?"

"कल सुबह।" उत्तर मिला।

"कल कहां रहे ?"

"कल काम-काज में फुरसत नहीं मिली। ट्रांसपोर्ट कमिश्नर के यहां दो मामले थे। आज तुमसे मिलने के लिए ही रुक गया हूं।" आगन्तुक अपने लंगोटिया हैं। अपने ही जिले में वकालत कर रहे हैं। अदालती काम से

राजधानी जाने का अवसर होता है तो लेखक मित्र से भेंट कर लेना नहीं चूकते।

अतिथि मित्र को भीतर ले लिया।

मन की खिन्नता दबा लेने के लिये मित्र का हाथ अपने हाथों में खूब जोर से दबाया। बायीं दीवार के साथ पड़ी कुर्सी को अपनी कुर्सी के समीप खींच लिया और उसे आग्रह से बैठाया। काम स्थगित हो जाने की स्वीकृति में अपनी कुर्सी की पीठ भी मेज़ की ओर कर दी। सुविधा प्रकट करने के लिये मित्र की ओर अभिमुख हो शैथिल्य की मुद्रा में कुर्सी पर कुछ पसर कर बैठ गया। वकील मित्र के 'न न तकल्लुफ की जरूरत नहीं, बस अभी लेकर चले आ रहे हैं' कहने पर भी घरवाली को फिर से चाय बनाने का आदेश दे दिया। सिगरेट पेश की और स्वयं भी सिगरेट लगायी।

लड़कपन के साथी से भेंट के उल्लास में सिगरेट से गहरा कश खींच बहुत सा धुआं छत की ओर फेंक कर पूछा—"सुनाओ क्या हालचाल है, कैसी कट रही है···कोई नयी बात, नयी घटना ?"

वकील साहब ने भी गहरे कश से बहुत सा धुआं छोड़ा और उत्तर दिया—"गांव-देहात में क्या नया होगा—वही पुराने बिस्तर-तकिये और वही पुराने सपने।" वकील साहब मुस्करा दिये, "रोज नयी बातें, नये सेन्सेशन और नये डेवलपमेन्ट तो यहां राजधानी में होते हैं, हम लोगों तक तो उन की गूंज ही पहुंचती है।"

"खाक नयी बातें होती हैं यहां। उबा दिया है जिन्दगी ने। असल जिन्दगी तो गांवों-देहातों में ही है। राजधानी तो दांव-पेंच का अखाड़ा मात्र बन गयी है। यहां का एटमौसफियर बड़ा डर्टी है, सब तरफ कांव-कांव, अजीब अस्वाभाविकता, कमीनापन, अपने आप को धोखा और दूसरों को धोखा देने की स्ट्रगल। हमारा मन तो सदा गांव-देहात की ओर ही दौड़ता रहता है। वही दिन अच्छे थे। निर्वाह की स्ट्रगल के अलावा भी कोई दूसरी बात होती थी, कुछ लेजर और पीस तो थी, हंसने-बोलने के लिये भी बात होती थी।"

वकील साहब ने मेज़ की ओर झुक कर राखदानी में सिगरेट झाड़ा। कश खींच कर धुआं छोड़ा और ब्योरे से बात कर सकने की सुविधा के लिये घुटने पर बायां घुटना चढ़ा कर बोले—"वैसी स्थिति अब वहां भी नहीं रही, लेजर और पीस उड़ गये। अब तो सभी जगह स्ट्रगल है। स्टैण्डर्ड बढ़ते जा रहे हैं, उस के लिये स्ट्रगल बढ़ती जा रही है। अब तो वहां भी गली-गली में चार-

चार रेडियो गूंजते रहते हैं। दूध वाले साइकिल पर आगे दूध का कैन लटकाये आते हैं तो पीछे कैरियर पर ट्रांज़िस्टर बजता रहता है, ईंधन बेचने वाली साटन की बंडी और टैबी की साड़ी का फैंटा कसे रहती हैं। जिसे देखो बुशर्ट-पैंट पहने, हाथ में सिगरेट ! चपरासी, क्लर्क, अफसर, वकील में कोई अन्तर नहीं कर सकते। स्टैण्डर्ड और शो बढ़ते ही जा रहे हैं और उस के लिये बेचैनी और स्ट्रगल। ह्वाइट कालर क्लास सब से अधिक सफर कर रहा है। अब तो सभी ह्वाइट कालर हैं। सवा सौ, डेढ़ सौ पाने वाले ढाई सौ का सूट डाटे फिरते हैं।"

विस्मय से सन्देह प्रकट किया—"ये तो बहुत बड़ा परिवर्तन है, ऐसे कपड़े और पोशाकें···!"

वकील अपने कथन के प्रति सन्देह का निराकरण करने की तत्परता से आगे झुक कर बोले—"तुम्हें विस्मय हो रहा है, पिछले ही मास की बात सुन लो। शेर वाली गली के सामने बिन्दु पाण्डेय की बजाजी की दुकान थी न ! उस के लड़के सतीश को तो जानते हो। उस ने कारोबार खूब बढ़ा लिया है। कलकत्ता, बम्बई और जाने कहां-कहां से स्मगलिंग का माल लाता है। मकान दुमंज़िला कर लिया है शेर ने। सोचा था, जाड़ा आ रहा है, दो पतलूनें सिलवा लें, उसी की दुकान पर गये थे। उस ने विलायती पीस दिखाया, बोला, यह आल वैदर फैबरिक है, सर्दी-गर्मी में बराबर चलेगा। तीन गज का पीस है। चाहे सूट बनवा लीजिये, चाहे दो पैन्ट। चार-पांच वर्ष के लिये निश्चिन्त हो जाइयेगा। धोबियों और ड्राईक्लीनरों की ऐसी-तैसी ! जब मैला मालूम हो, बाल्टी में साबुन घोल कपड़े को डुबकी दे दीजिये और वैसे ही लटका दीजिये। १५-२० मिनट में सूख कर पहनने के लिये रेडी। प्रेसिंग की भी जरूरत नहीं। क्रीज़ सदा उस्तरे की धार की तरह। दाम पूछने पर उस ने बताया, छप्पन रुपये गज !" वकील साहब ने श्रोता के विस्मय-बोध को सचेत करने के लिये कपड़े का मूल्य स्वर ऊंचा करके बोला और उन की भृकुटी उठ गयी।

वकील मित्र के विस्मय के अनुमोदन में योग दिया—"दिस इज़ टू मच ! छप्पन रुपये गज के गाहक तो लखनऊ, इलाहाबाद में भी कम मिलेंगे। इस भाव का कपड़ा तो दिल्ली, कलकत्ता, बम्बई में ही चलता होगा।"

वकील साहब ने धैर्य से सुनने का संकेत किया—"तुम सुनो तो, दैट इज़ दी पाइंट, अब स्टैण्डर्ड सभी जगह कैसे बढ़ रहे हैं।" वकील साहब बोलते गये।

"हमने सतीश से कहा, भई इस दाम का कपड़ा हमारे बस का नहीं।

"वह हंस दिया—वकील साहब आप इसे लेंगे तो जरूर, आप दूसरे लोगों को पहनते देखेंगे तो लेने आयेंगे। तब हमारे यहां होगा नहीं। जाने फिर कब मौका लगे। ऐसा कपड़ा तो आप ही जैसे बड़े लोगों के लिये है। तीन-तीन गज के इक्कीस पीस आये थे, बस दो बाकी हैं। हमने विस्मय से पूछा, उन्नीस बिक गये। एक सौ सत्तर रुपये में कोट-पतलून का कपड़ा। यहां ऐसे कौन रईस आ गये भैया!

सतीश ने उत्तर दिया—"वकील साहब आप कहां रहते हैं, यहां रईसों की कमी है! दो ओवरसियर बाबू आये थे, पांच पीस तो वही ले गये। दो पीस बाकी हैं। आज नहीं कल ये भी बिक जायेंगे।"

वकील साहब ने साग्रह कहा—"तुम अब चल कर देखो, टैरेलिन के बुशर्ट और डैकरान की पैंट तो आम तौर से दिखायी देंगे। मुसीबत तो सफेदपोश वर्ग की है। दूसरे लोगों के घरों में तो पैसा छप्पड़ फाड़ कर आ रहा है। उन्हें दामों की क्या परवाह, उन्हें तो नयी से नयी चीजें चाहिये। पर ये सब पैसा आता कहां से है? प्रोडक्शन तो इतना बढ़ नहीं गया। कोई इन्डस्ट्री चालू नहीं हो गयी। स्टैंडर्ड बढ़ते काहे से हैं, धांधली से। इसका उपाय होना चाहिये वरना ये धांधली ले डूबेगी।" भीतर से पत्नी ने चाय बना कर भेज दी थी।

एक प्याला वकील साहब की ओर बढ़ा कर स्पष्टीकरण चाहा—"बन्धु, चार-पांच सौ रुपये का कपड़ा केवल शौक में खरीद डालना मामूली बात नहीं है, उसके लिए सामर्थ्य चाहिए। इन ओवरसियरों, बी० डी० ओ०, एस० डी० ओ० लोगों की तनख्वाह क्या होती होगी; डेढ़ नहीं दो सौ-तीन सौ! इनके परिवार भी तो होंगे।"

वकील साहब उत्तर देने के लिए उत्तेजित हो गये। उनके हाथ का चाय का प्याला तश्तरी में छलक गया। पतलून पर आ पड़ी चाय की बूंद को चुटकी से उड़ा कर बोले—"दैट्स दी पाइंट! तुम इसी से धांधली की व्यापकता का अन्दाज़ कर सकते हो। हर जिले में सब तरफ कांस्ट्रक्शन चल रहा है। सड़कें इमारतें, पुल और बांध बन रहे हैं। डेवलपमेन्ट के लिए नये-नये प्रोजेक्ट स्टार्ट हो रहे हैं। जिले-जिले में करोड़ों रुपये का बजट है। इन सब कामों के सरकारी पुरोहित अपनी दक्षिणा का महत्व उन कामों से अधिक समझते हैं। दस परसेन्ट का पुराना दस्तूर था। अब वह पन्द्रह-बीस परसेन्ट तक पहुंच गया है। जानते

ही हो सरकारी काम पच्चानवे प्रतिशत ठेके पर होते हैं। सरकारी अमले की दक्षिणा में बाधा हो तो बिल पास नहीं हो सकते। सरकार पर बकाया रकमों के लिए छः लाख चालीस हजार के दावे तो मेरे ही मुवक्किलों के चल रहे हैं। यह लोग सैलरी पर गुजारा करते हैं? सैलरी डेढ़ सौ-दो सौ ही हो, मुफस्सिल में ये लोग डेढ़-दो हजार से कम नहीं बनाते हैं।"

वकील साहब की बात के प्रति शंका प्रकट की, "बन्धु-रिश्वत तो लेते होंगे पर डेढ़-दो हजार महीना, साल में बीस-पच्चीस हजार अत्युक्ति जान पड़ती है।" वकील साहब ने चाय समाप्त कर प्याला मेज़ पर रख दिया। उन्हें फिर सिगरेट पेश किया। वकील साहब सिगरेट सुलगाते हुये बोले, "तुम्हें अत्युक्ति जान पड़ती है, विस्मय हो रहा है तो एक मामला सुनाये देता हूं, सब समझ में आ जायेगा। तुम चाहे कहानी लिख लेना—

अप्रैल की बात है। सुबह-सुबह एक किसान आया। बहुत परेशान था। किसान के लड़के को "हौलबाग" चौकी के हवलदार ने ओवरसियर की रिपोर्ट पर गिरफ्तार करके सदर भेज दिया था और थाने से उसे हवालात भेजा जा चुका था। किसान ने कहा—"हुजूर का जस सुनकर सरनी आया हूं। मैं इज्जतदार गृहस्थ हूं। मेरी नाक कट रही है। जिस तरह हो आप लड़के को जेल और सजा से बचाइये।" हवलदार ने ओवरसियर की रिपोर्ट पर चोरी के माल के लिए किसान के घर की तलाशी ली थी। तलाशी में उसके घर से ओवरसियर द्वारा रिपोर्ट में दरज कराये कुछ कपड़े बरामद हुये थे।

मामला सुन कर हमने किसान से कहा—"जेल और सजा की बात तो अदालत में देखी जायगी। फिलहाल तो लड़के के लिए जमानत की कोशिश की जानी चाहिए। जमानत की दरख्वास्त की फीस हम पचास रुपये लेंगे। देहाती से बीस की आशा हो तो बात पचास से आरम्भ की जाती है। वह अपनी टोपी में से दस का मैला सा नोट निकाल कर गिड़गिड़ाता है, हुजूर इस बखत तो जल्दी में यही उधार मिला है। इस बखत परवरिश कर दीजिये बाद में अन्नदाता जो कहेंगे···। उसकी ओर से आंखें फेर कर चले जाने का इशारा कर दीजिये तो बंडी की जेब से पांच का एक और नोट निकालेगा। आप उसकी बात सुनने से इनकार करेंगे तो अंटी से पांच का एक और नोट निकालेगा परन्तु किसान ने सौ का नोट मेरे कदमों पर रख दिया और मेरे घुटने पकड़ कर गिड़गिड़ाया, "हुजूर जमानत कराइये और सब कुछ भी आपको

हीं करना है, लड़के को आप ही बचायेंगे। ये सब कुछ आपके चरणों में है।"

किसान के व्यवहार से मेरा माथा ठनका। हमारी प्रेक्टिस तो प्रायः ही क्राइम की रहती है। किसान से पूछा—"तू हमारे यहां आया है तो तेरे लड़के की पैरवी तो करेंगे ही पर सच-सच बता लड़के ने कितना माल उड़ाया है?"

किसान ने धरती छूकर धरती माता की कसम खायी—"हुजूर, लड़का ऐसा नहीं है, उसने चोरी नहीं की। ओवरसियर साहब के खुद दिये दो-चार कपड़े घर में जरूर थे। वह तो लड़के पर हजारों की चोरी लगा रहे हैं। कह रहे हैं, लड़के को जेल के कोल्हू में डलवा कर रुपया निकलवा लेंगे। ओवरसियर साहब लड़के से नाराज़ हो गये हैं, झूठ-मूठ मेरी नाक कटवा रहे हैं।"

हमने किसान से पूछा—"ओवरसियर को तेरे लड़के से क्या नाराज़गी है?"

किसान ने कहा—"हुजूर नाराज़गी क्या है; नाराज़गी यही है कि लड़के को छोड़ना नहीं चाहते हैं। वह बड़े लोग हैं, उन्हें नौकर की जरूरत है। अब यहां गांव-देहात में नौकर कहां मिलते हैं। मेरा बड़ा लड़का फौज में भरती हो गया है। मुझ से अकेले सरता नहीं। घरवाली मान्दी रहती है। मैंने लड़के से कहा, तू दस रुपल्ली के लिए वहां क्या पड़ा है, घर का काम देख। इस पर ओवरसियर साहब नाराज़ हो गये। लड़के को चोरी लगा रहे है। चाहते हैं, लड़के की बदनामी हो जाये तो उसे कहीं और काम न मिले, उनकी गुलामी में पड़ा रहे। लड़के को तनखाह भी तो पूरी नहीं देते, मुफ्त का गुलाम चाहते हैं।"

फौजदारी की प्रेक्टिस है तो थाने से हमारा सरोकार बना ही रहता है। थाने से पता लिया, लड़के को दफा एक सौ चार में छुटपुट चोरी के लिए गिरफ्तार किया गया था। किसान अपने साथ जामिन लेता आया था। लड़के की जमानत दो सौ रुपये के मुचलके और एक जमानत पर हो गयी।

हमने लड़के को समझाया—"जेल से बचना है तो हमें पूरा वाक्या सच-सच बता दे। तुझ पर क्या इलज़ाम लगाया जा रहा है? बात कैसे हुई? हमें तुझ से हिस्सा नहीं बटाना, सिर्फ पैरवी की फीस लेनी है। तुझे जो हजम हो जाय तेरा वैद और वकील से शरम नहीं की जाती। हमें ठीक वाक्या मालूम नहीं होगा कि ओवरसियर तुझ पर कैसा इलज़ाम लगा रहा है तो हम उसके बयान और सरकारी गवाही को किस तरह काटेंगे। लड़का कुछ फूटा।"

जानते हो, साल भर के बकाया भुगतान फरवरी-मार्च में होते हैं। उसी समय सरकारी अमलदारों की भी फसल पकती है। लड़का दूसरे-तीसरे ओवर-

सियर को नोटों की बड़ी-बड़ी गड्डियां घर लाते देखता था। यह भी जानता था कि ओवरसियर नोटों की गड्डियां भीतर की कोठरी में टीन की चादर के बड़े बक्से में रखता था। बक्से पर खूब बड़ा ताला था। ताले की चाबी ओवरसियर अपने जनेऊ में बांधे रहता था। एक दिन ओवरसियर असिस्टेंट इंजीनियर से मिलने सदर गया था। सांझ से पहले लौट नहीं सकता था। ओवरसियर के बाल न बच्चा, ब्याह को दो-तीन बरस ही हुये थे। घर का कोई बूढ़ा-बूढ़ी साथ नहीं आये हुये थे। ओवरसियरनी ने सुबह के भात के बाद लड़के को चौका-बासन समेटने और भीतर-बाहर की कोठरियों को बुहारने के लिये कह दिया। स्वयं दो-सौ कदम पर बी० डी० ओ० की घरवाली के यहां गप्प-शप्प के लिये चली गयीं। वह प्रायः ही ऐसा करती थीं। नौकर लड़का जाने कब से अवसर की प्रतीक्षा में था। उस दिन लोभ संवरण नहीं कर सका। उसने लकड़ी काटने का दांव ताले के जोड़ में फंसा कर ताला झाड़ डाला और टीन की चादर के बड़े बक्स में थैले में रखी माया लेकर चम्पत हो गया। ओवरसियरनी का सोने-चांदी का जेवर भी उसी बक्स में था। लड़के ने समझदारी यह की कि कोई जेवर या कीमती कपड़ा नहीं लिया। ओवरसियर रिपोर्ट में हजारों रुपये नकद चोरी की बात कैसे लिखा सकता था, खुद न फंस जाता। उसने लड़के के विरुद्ध ताला तोड़कर चोरी करने की रिपोर्ट लिखायी और चोरी में कुछ पुराने कपड़ों के नाम लिखा दिये जो उसने लड़के को स्वयं दिये थे। वही कपड़े पुलिस को तलाशी में मिल गये थे। स्पष्ट था, चार पुराने कपड़ों के नुकसान के लिये चौकी तक दौड़ने, रिपोर्ट लिखाने, गवाही के लिये अदालत में पेशियां भुगतने का झंझट सिर लेने की क्या आवश्यकता हो सकती थी। वह लड़के को भय दिखाकर रकम निकलवा लेने की आशा कर रहा था या प्रतिहिंसा में लड़के से बदला लेना चाहता था।

हमने लड़के से पूछा—ओवरसियर के कोई बाल-बच्चा है या नहीं, उसका ब्याह कब हुआ था, ओवरसियरनी कैसी है, पर्दा करती है ? लड़के ने बताया, उनके बाल-बच्चा कोई नहीं था। ओवरसियरनी खूब पट्ठी थी पर पर्दे वाली भली औरत थी। ओवरसियर के लिये उसने बताया, वैसे ठीक ही है, जरा कमजोर बदन के हैं, मिजाज के गरम हैं।

हमने लड़के को समझाया, तुम अदालत में जैसा बयान हम बतायें वैसा देना।

लड़के का बाप डर रहा था। अदालत और जुये का क्या भरोसा, हाकिम

और गोट न जाने किस करवट पड़ जाय। वह चाहता था मामला अदालत में न जाय। हमने भी उसे राय दी कि थानेदार की कुछ सेवा करे तो मामले को खत्म कराने की कोशिश हो सकती है। उससे दरोगा को सौ रुपये पुजवा दिये। हमने दरोगा से बात की—मामले में जान नहीं है। इलज़ाम अदालत में साबित नहीं हो सकेगा। लड़का बयान देगा कि ओवरसियर उससे दूसरी बात से नाराज़ हैं। ओवरसियरनी मालिक से खुश नहीं रहतीं। ओवरसियर ने अपनी घरवाली को उसके साथ देख लिया था। ओवरसियर ने उसे लकड़ी से मारा तो वह भाग आया। जो कपड़े उसके यहां बरामद हुये हैं, ओवरसियर ने उसे खुद दिये थे। लड़के के गवाह मौजूद हैं कि वह कपड़े लड़का बहुत दिन से पहन रहा था।

दरोगा मामला समझ कर मुस्कराया। उसे मामला स्वयं अदालत के बाहर ही समाप्त कर देने में लाभ हो सकता था। दरोगा ने अदालत में चालान भेजने के पहले रिपोर्ट की पक्की तहकीकात और सबूत के गवाह तय करने के लिए ओवरसियर को बुलवाया। बात-बात में ओवरसियर को लड़के के बयान के बारे में बता दिया और कहा—सफाई के वकील उसकी घरवाली को अदालत में तलब करेंगे तो ओवरसियरनी को इजलास में पेश होना पड़ेगा। ओवर-सियरनी को सफाई के वकील की जिरह का जवाब भी देना पड़ेगा।

ओवरसियर ने अपनी चोरी की रिपोर्ट के मामले का यह रूप सुना तो उसे दिन में तारे दिखाई दे गये। उसने गिड़गिड़ाकर दरोगा से प्रार्थना की—"जनाब, यह सामला सरासर झठा है, लौंडे को किसी वकील ने पट्टी पढ़ा दी है। खैर, मुझे इन्साफ नहीं मिल सकता तो आप मामले को रहने दीजिये, मैं अपनी रिपोर्ट वापस लेता हूं।"

दरोगा ने ओवरसियर को फटकारा—"यह नौटंकी का खेल नहीं, पुलिस की कारवाई है। तुम जिम्मेदार सरकारी अफसर हो। किसी पर चोरी का इलज़ाम लगा देना मज़ाक है? हम मामला कैसे छोड़ दें! हौलबाग की चौकी में रिपोर्ट का रेकार्ड है। हमारे रोज़नामचे में लौंडें को हवालत भेजने का रेकार्ड है। हम चालान तैयार कर चुके हैं। हम खुद मुसीबत में पड़ जायें! लड़का अदालत में गलत बयान देगा तो तुम्हारी बीबी उसका जवाब दे। तुम ने भी तो उस पर चोरी का इलज़ाम लगाया है।"

वकील साहब हंसे—ओवरसियर ने अपनी रिपोर्ट का चालान रद्द करवाने के लिए दरोगा को पांच सौ रुपये पूजे। दरोगा ने उससे कहा, तुम आसामी

के वकील से बात कर लो। वे उल्टा लड़के से दावा न करा दें और हमें अदालत के सामने जवाबदेही करनी पड़े ।

ओवरसियर साहब हमारे यहां आये। आंखों में आंसू भर कर बोले—"वकील साहब, ये क्या जुल्म करवा रहे हैं ! आप शरीफ और खानदानी हैं, आपकी इज्ज़त है। आपको शरीफ बाइज्ज़त लोगों से हमदर्दी होनी चाहिए। आपने यह क्या केस बना दिया ? आपका ख्याल है, हमने लौंडे पर जुल्म किया है ? हम आप पर ही इन्साफ छोड़ते हैं। आप से क्या छिपाना, आप खुद जान जायेंगे जुल्म हम कर रहे हैं या हम पर हुआ है। ईश्वर जानता है, लौंडा बक्स का ताला तोड़कर जो थैला लाया उसमें गिने हुये छियानबे नोट तो सौ-सौ के थे। कुल रकम इक्कीस हज़ार से ऊपर थी। हमारे यहां दूसरे लोगों की अमानत रखी थी। हमें तो उन्हें भरनी ही पड़ेगी। हम आप पर छोड़ते हैं। आप ही सलासत कर दीजिये। सलासत की फीस एक हजार ले लीजिये। हमें आधी रकम ही दिला दीजिये।···हमने ओवरसियर को उत्तर दिया, हमें रकम के बारे में क्या मालूम ? हमें उससे क्या मतलब ? लड़के पर चोरी का इलज़ाम था। रिपोर्ट में सिर्फ कपड़ों का ज़िक्र है, हमें उस पर लगाये गये जुर्म की सफाई पेश करनी है। हमारे पास जो मुवक्किल आया, जिसने हमें इंगेज किया, हमें उसकी पैरवी करनी है।"

ओवरसियर गिड़गिड़ाने लगा—"हम भी तो सलासत के लिए आपके पास आये हैं। आप अपना मेहनताना ले लें। हम तो सिर्फ इन्साफ चाहते हैं। हमने उसे जवाब दिया, वकील दोतरफा नहीं चल सकता, यह काम वकालत की नैतिकता के खिलाफ है। इस समय हम उसके वकील हैं और तुम घबराते क्यों हो, जहां से इतना आया वहां से और भी आयेगा। फिर जरूरत पड़े तो हमें याद करना।" वकील कहकहा लगाकर हंसे और बोले, "तुम्हें इस ज़माने की धांधली का कुछ अंदाज़ा हुआ, कैसी-कैसी रकमें काटते हैं यह लोग—ऐंड ऑल दिस इज़ पबलिक मनी। इस धांधली से नुकसान तो पबलिक का होता है। इन लोगों के लिए चार सौ, पांच सौ क्या हैं ?" गूढ़ चिन्ता से जाग कर वकील साहब से पूछा, "तुम्हें इतना जाल रचने से क्या मिला; बस सौ रुपल्ली ?"

वकील हंस दिये—"अरे नहीं, हमने आसामी से तीन सौ और लिये।"

समर्थन की मुद्रा में सिर हिला कर वकील साहब से पूछा—"तब तो धांधली के बढ़ते जाल से तुम्हारा असंतोष उचित ही है। यह बताओ, तुम इस धांधली के जाल की मक्खी हो या मकड़ी ?"

उपदेश

भूपेन्द्र ने अपने देश में ही लन्दन के बारे में बहुत कुछ सुन लिया था। उसे इंगलैंड में रह आये लोगों से जितनी जानकारी प्राप्त हो सकी थी, उससे कहीं अधिक चेतावनी और सावधानी से रहने की शिक्षा उन लोगों से मिली थी जिन्होंने इंगलैंड केवल संसार के नक्शे पर ही देखा था। सबसे अधिक सावधानी का उपदेश ओर नसीहत उसने चरित्र की रक्षा के लिये पायी थी। सुनी हुई बातों से उसे रोमांच और वितृष्णा, दोनों ही तरह की अनुभूति होती थी। उसे अपने आचार और नैतिकता पर भरोसा था। घर से चलते समय बड़े-बूढ़े आशीर्वाद देते हुये स्वास्थ्य का ध्यान रखने के साथ-साथ मोहनियों के छल-छंद से सावधान रहने की चेतावनी देना भी नहीं भूले थे। भूपेन्द्र ने दृढ़ निश्चय से देश के चरित्र-गौरव की रक्षा करने के लिए वासना के अमित प्रलोभनों और आक्रमणों के बीच शुकदेव के समान निर्लिप्त और निःसंग रहने की प्रतिज्ञा कर ली थी।

भूपेन्द्र लन्दन यूनिवर्सिटी से दर्शन शास्त्र में पी० एच० डी० की उपाधि अर्जन करने के लिए इंगलैंड गया था। पढ़े हुए कुछ अंग्रेजी उपन्यासों और जन-श्रुति के आधार पर उसके मस्तिष्क में लन्दन की सुन्दरियों के कमनीय रूप, वेश और व्यवहार की कुछ कल्पना पहले से ही मौजूद थी परन्तु उन्हें प्रत्यक्ष देखने पर उसे लगा कि श्रुत ज्ञान से वास्तविक की कल्पना कर लेना सम्भव नहीं था। अत्यन्त शुभ्र चेहरे और गुलाबी गाल, संवरे हुए पैने नख-शिख, सुनहरे रेशमी केशों के विविध प्रसाधन, हंसों के समान लम्बी ग्रीवायें, आक्रमण के लिए उद्यत् उभरे हुए वक्ष, डमरू जैसी कटि, फरफराते ऊंचे स्कर्टों और फ्राकों के नीचे गोरी-गोरी मांसल पिंडलियां, तत्परता में एड़ी उठाये निधड़क चाल और निगाहें, आंखें मिलते ही लाल होठों पर आ जाने वाली

मुस्कानें। भूपेन्द्र कल्पना करने लगता, महर्षि विश्वामित्र को एक अप्सरा से पाला पड़ा था परन्तु लन्दन के बाजारों-सड़कों और ट्यूब-रेलबे स्टेशनों पर अप्सराओं के झुण्ड आचारवान पुरुषों का तप-भ्रष्ट करने के लिए घूम रहे हैं। वह लन्दन की घोर वासना की आधुनिक अलकापुरी में अध्ययन का तप पूर्ण करने के लिए ही गया था। तमाशा न बनने के लिए परिस्थितियों की विवशता में उसने स्थानीय वेश अपना लिया था। कोट-पेंट पहनता था, कण्ठ से वक्ष पर नेकटाई भी लटकती रहती थी परन्तु उस वक्ष के भीतर आचारवान भारतीय हृदय था और मस्तिष्क में आचार-निष्ठा का दृढ़ निश्चय।

लन्दन में भूपेन्द्र से पहले आये भारतीय विद्यार्थी मित्रों ने लन्दन की स्ट्रीट-गर्ल्स (आवारा छोकरियों) से बचे रहने की चेतावनी दे ही थी जो केवल हाव-भाव और लाज प्रदर्शन के मूक आकर्षण पर ही निर्भर नहीं करतीं वरन् गलियों अथवा रेस्तोरां में निधड़क आंख में आंख डालकर, मुख से बोल कर या बांह में बांह डालकर भी प्रणय-निमंत्रण देने में नहीं हिचकतीं। भूपेन्द्र ने यह सब स्वयं भी लन्दन-वास के प्रथम सप्ताह में ही देख लिया था। ऐसे विचित्र अनुभवों से उसे वितृष्णा की ही सिहरन अनुभव होती थी। उसे लगता जैसे सहसा कांटों से भरे झाड़ों अथवा गंदगी में आ पड़ा हो। वह इन दृश्यों को ग्लानि से आंखें फ़ेर कर अनदेखा कर देता था। ऐसा संकट लन्दन में कहां नहीं।

लन्दन के बाजारों की पैदल पटरियों और भूगर्भ रेलवे-स्टेशनों, 'एस्केलेटरों' (स्वचालित उतरने-चढ़ने वाली सीढ़ियों) पर ठसाठस धकापेल भीड़ में भी निधड़क नारी के दुर्धर्ष संघर्षणों से वह अपने को बचाये रखता था। भूपेन्द्र वासना की उन चलती-फिरती पुतलियों, वासना के जाले फैलाने वाली कामदेव की मकड़ियों की ओर से सतर्कता के कारण सिमटा रहता था। उसके लिये यह जान लेना कठिन था कि लन्दन में उन्मुक्त भाव से स्वच्छन्द फिरने वाली नारियों और लड़कियों में वह किसे भद्र महिला समझे और किसे 'हैग' (प्रौढ़ा वेश्या), 'स्ट्रीट गर्ल' (आवारा छोकरी या किराये की लड़की)। यूनिवर्सिटी, पुस्तकालय अथवा भोजनालय में जब भी वह किसी नारी को मार्ग देने के लिये ठिठक जाता अथवा कोई नारी स्वयं उससे कुछ पूछती तो आंखों और होंठों पर मुस्कान की विनय से। अपने साथियों से उसने 'वैसी' छिनाल छोकरियों की पहचान सुन ली थी। भद्र महिलायें और शिष्ट लड़कियां सड़क, गली या बाज़ार में कभी टहलने की श्लथ मंद गति से नहीं चलती दिखायी देतीं।

भूपेन्द्र को लन्दन में छः मास बीत चुके थे। वह तन-मन से अध्ययन में लगा था। लन्दन के सस्ते भोजनालय संध्या जल्दी ही अपनी दुकानें बढ़ा देते हैं। वह किफायत के लिये पांच बजे ही यूनिवर्सिटी कैण्टीन में रोटी, साग और आलू खाकर एक प्याला काफी ले लेता था। फिर आठ बजे तक अध्ययन में लगा रहता। उसके बाद समीप ही रसेल स्क्वेयर के ट्यूब-स्टेशन से घर लौटने के लिए भूगर्भ गाड़ी पकड़ लेता था। स्टेशन के बाहर बाजार और सड़क संध्या साढ़े आठ तक प्रायः सूने हो जाते थे। केवल सड़क किनारे के 'पब्स' (बियर खानों) में ही चहल-पहल दिखाई देती थी। उस समय स्टेशन पर ट्रेन से भी अधिक भीड़ नहीं उतरती थी। स्टेशन की प्रकाशमान ड्योढ़ी में अथवा बाहर पैदल-पटरी पर धुंधले प्रकाश में दोनों हाथों से अपने बटुये को दबाये, चेहरे पर तुरन्त मुस्कान ले आने वाली, ग्राहकों की प्रतीक्षा में खड़ी स्ट्रीट-गर्ल्स प्रायः ही दिखायी दे जाती थीं। उनके समीप से निकलने पर सस्ती तीखी सुगंधों की अनुभूति के साथ उनके अस्फुट निमंत्रण भी सुनाई दे जाते थे··· "कैसा सुहावना समय है···वांट कम्पनी (साथ चाहिए)···अकेले ही जा रहे हो !···कुछ मौज-मेला !"

भूपेन्द्र उन निर्लज्ज निमंत्रणों को अनसुना, अनदेखा कर देने के लिए गर्दन झुका कर तेज कदमों से निकल जाता था। बेचारा क्या करता !

सितम्बर के आरम्भ में एक संध्या वह 'स्लोन स्क्वायर' स्टेशन की ड्योढ़ी से निकल रहा था। तेज चाल से चलती हुई एक लड़की, उतावली में उससे आगे निकल जाने के प्रयत्न में उसकी आस्तीन से रगड़ गयी। लड़की ने घूम कर अपनी इस चूक के लिए तुरन्त क्षमा मांगी। विनय में लड़की की पतली कमर लचक गयी। मुस्कान में मोती जैसे दांत खिल गये और आंखें संकोच में तिरछी हो गयीं।

"खेद है," उसने कहा, "आपको धक्का तो नहीं दिया मैंने ?"

भूपेन्द्र को लड़की का रगड़ कर निकल जाना अच्छा नहीं लगा था परन्तु उसके सविनय क्षमा याचना के उत्तर में उसने भी खेद प्रकट कर दिया। लड़की पल भर उसकी आंखों में आंखें डाल एक बार फिर मुस्करायी थी और तेजी से निकल गयी। लड़की पैदल-पटरी पर दो कदम आगे बढ़ गयी। उसने एक बार फिर घूमकर पीछे देख लिया।

धुंधले प्रकाश में उसकी मुस्कान दिखायी दे गयी। उसके बाद वह पैदल-

पटरी के सीमेंटी फर्श पर ऊंची एड़ी से खट्-खट् करती हुई भली लड़कियों की अभ्यस्त तेज चाल से आगे बढ़ती चली गयी।

लड़की भूपेन्द्र के सामने आगे-आगे चली जा रही थी। उसकी सरल शिष्टता भूपेन्द्र को छू गयी। उसका शरीर छू जाने के कारण जो विरक्ति अनुभव हुई थी, उसके लिये संकोच हुआ। सोचा, नहीं वैसी नहीं है यह···। लड़की के हाथ में बटुये के साथ एक पुस्तक और कोई पत्रिका भी थी। भूपेन्द्र ने फिर सोचा, कोई पढ़ी-लिखी शिष्ट नवयुवती है। कितनी स्वाभाविक और सरल। उसे कई पल तक लड़की का खूब गोरा-गुलाबी चेहरा, सुनहले-घुंघराले काकुल, बिजली के तीव्र प्रकाश में चमकते मोती जैसे दांत और लाल होंठ प्रत्यक्ष न होने पर भी स्मृति में दिखायी देते रहे। उसके मन ने कहा—लड़की भली है। उसकी पोशाक भी सोबर है। लाल कार्डिगन, लाल ज़मीन पर सफेद और काली धारियों का चारखाने का स्कर्ट, बिल्कुल काम-काजी लड़कियों की पोशाक। मुट्ठी भर कमर, पतली और लम्बी लौकी जैसी पिंडलियां वास्तव में स्मार्ट···पर लड़की भली है।

भूपेन्द्र स्टेशन पर संध्या ८-३० या ८-४० पर ही लौटता था। उपर्युक्त घटना के चार दिन बाद वह यूनिवर्सिटी से लौट कर स्टेशन की ड्योढ़ी से सड़क पर निकलते समय जरा ठिठका। बूंदाबांदी जो दूसरे पहर हलकी-हलकी आरम्भ हो गयी थी, इस समय कुछ तेज हो गयी थी। वह बरसाती पहने था। सड़क पर आने से पहले उसने हैट का किनारा माथे पर खींचा। बायीं ओर से जनाने जूतों की खट्-खट् बहुत समीप सुनाई दी। वह राह देने के लिए एक कदम दांयी ओर हटा। उसकी दृष्टि बांयी ओर घूमी। वही लड़की थी। वही लाल कार्डिगन, वही चारखाने का स्कर्ट। सीने पर थमे काले बटुये के साथ पुस्तक-पत्रिकायें। बूंदा-बांदी के कारण सिर पर लाल बैरेट (टोपी) थी। प्लास्टिक की बरसाती कंधों पर पड़ी थी। भूपेन्द्र इतने समय में लन्दन का उच्चारण, मुहाविरा और अदब-कायदा बहुत कुछ सीख गया था। उसने लड़की को पहचान कर उसकी दृष्टि अपनी ओर होते ही शिष्टता की मुस्कान से गुड-ईवनिंग कह दिया। लड़की ने प्रसन्नता के उच्छ्वास से उत्तर दिया—"हाउ नाइस आफ यू (हाय! कितने अच्छे हो)!"

भूपेन्द्र अचकचा गया। स्वयं गुड-ईवनिंग कह कर वह विचित्र स्थिति में फंस गया था। मन में आया, लड़की को झटक दे पर ऐसा कर न सका। दांत

किचकिचा कर सोच रहा था, क्या कहे ? लड़की गुदगुदाते हुए स्वर से बोल उठी—"बूंदें तेज हो रही हैं, कहां चलोगे ?"

भूपेन्द्र ने संयत होकर पूछा—"क्या मतलब ?"

लड़की ने कहा—"तुम्हारे घर चल सकते हों तो ठीक है, यहां समीप ही दूसरी जगह भी मिल सकती है परन्तु एक घण्टे के लिए पांच शिलिंग देने पड़ेंगे।"

भूपेन्द्र का भाव लड़की की स्पष्टता से कुछ बदल गया। विश्वास था, मर्द है, बलात् तो यह कुछ कर नहीं लेगी ! ऐसी लड़कियों को घृणा और वितृष्णा से फटकार देने की इच्छा उसने कई बार अनुभव की थी। उसे सबक सिखाने के लिए बांह छुड़ाते हुए कुछ रुखाई से बोला—"पांच शिलिंग फेंक देने की मुझे क्या जरूरत है ?"

लड़की ने उसकी बांह से और भी सट कर ठोढ़ी उसके कंधे से लगा दी—"डियर, तुम्हें पांच शिलिंग की क्या परवाह !···आई हैड नो लक फार द होल वीक (हफ्ता भर ऐसे ही बीत गया)···दफ्तर में रोज़ ही रुक जाना पड़ता है।" लड़की ने भूपेन्द्र की बांह को और दबाया।

लड़की के स्वर की कातरता और आंखों की भीख ने संयमी भूपेन्द्र के मन को छू लिया। संयम रखने का दृढ़ निश्चय रहने पर भी उसने तटस्थ हो करुणा से पूछ लिया—"इससे भला तुम कितने की आशा करोगी ?"

लड़की ने उत्तर दिया—"वही एक पौण्ड !" कहते-कहते उसने अपनी ठोढ़ी भूपेन्द्र के कंधे से सटा दी, "आइल गिव यू रियल फन (तुम्हें खुश कर बूंवी)·····सदा याद रखोगे।"

भूपेन्द्र ने दांत पीस लिये। मन में घृणा से सोचा—ऐसी छिनाल को भली लड़की समझ लेने के प्रायश्चित में एक पौण्ड उसकी ओर फेंक दे परन्तु अपनी ग्लानि और भारतीय चरित्र का गौरव भी प्रकट कर देने का उच्छ्वास पूरा कर लेना चाहता था। ड्योढ़ी से सड़क पर कदम रखता हुआ बोला—"आओ, एक पौंड दे दूंगा·····।"

लड़की साथ चल पड़ी।

भूपेन्द्र ने भूगर्भ स्टेशन से दांयी ओर सड़क पर बढ़ते हुए कोट की भीतरी जेब से एक पौण्ड का नोट निकाल लिया और साथ चलती हुई लड़की की ओर बढ़ाकर बोला—"मैंने तो तुम्हें बहुत भली और सुसंस्कृत लड़की समझ

कर विश (गुड ईवनिंग) किया था। मुझे आशा न थी कि तुम ऐसे घृणित काम करती होगी।"

लड़की ने भूपेन्द्र की बांह में पड़ी अपनी बांह सहसा खींच ली। उसकी गर्दन तन गयी और रुक कर फुंकार उठी—"चुप रहो जी·····मैं क्या घृणित काम करती हूं,·····जो करती हूं, तुम्हारे जैसों के साथ करती हूं।·····बट आई डू इट इन नीड एण्ड यू डू इट फार फन (मेरी वह मजबूरी है और तुम्हारे लिए तफरीह)।"

लड़की ने क्रोध में सड़क पर पांव पटक दिये और उल्टी दिशा में खट्-खट् तेज कदमों से लौट गयी।

भूपेन्द्र हाथ में नोट लिये उपदेश देने के आवेश में मुंह खोले अवाक् देखता रह गया।

कलाकार की आत्महत्या

कर्तार दफ्तर के बाद घर लौट रहा था। वह साधारण अभ्यास के अनुसार रास्ते में पड़ने वाले रेस्तरां में एक प्याला चाय पीने के लिये चला गया था। रेस्तरां में भीड़ अधिक न थी। कर्तार की नज़र कोने की मेज़ की ओर चली गयी। वह प्राय: उसी मेज़ पर बैठा करता था। समीप की मेज़ पर बैठा हुआ था भवेश। कर्तार का मन रेस्तरां में भवेश को अकेले देखकर विस्मय और आह्लाद से उछल पड़ा। भवेश कर्तार का पुराना परिचित था परन्तु अब वह प्रमुख कवि और कहानीकार बन चुका था। उससे अकेले में दो बातें कर सकने की आशा हुई।

भवेश ने बहुत प्रतिष्ठा और ख्याति पा ली थी। अब कर्तार जैसे क्लर्क के लिये उनका सामीप्य दुर्लभ हो गया था परन्तु भवेश कुछ विचित्र स्थिति में था। भवेश के समीप खड़ा था कर्तार का परिचित बैरा—खिन्न, क्रुद्ध मुद्रा में; भवेश भी कुछ वैसी ही स्थिति में। वह अस्वस्थ और थका-सा लग रहा था—गुलाबी गंदली आंखों में परेशानी, मेज़ पर रखे हाथों की उंगलियों में जली हुई बीड़ी का टुर्रा।

"क्या बात है ?" कर्तार ने बैरे और भवेश में तनाव भांप कर बैरे से पूछ लिया।

"पहर भर से बठे हैं···तीन रुपये का खा चुके हैं···चार प्याले चाय पी चुके हैं।" बैरे ने झुंझलाकर कहा, "बिल लाते हैं तो और चाय मांग लेते हैं। कह रहे हैं, अभी और लाओ।"

कर्तार ने स्थिति का अनुमान कर लिया। उसकी स्मृति में सहसा बहुत कुछ कौंध गया—"फिक्र मत करो, दो प्याले चाय लाओ।" उसने बैरे को आदेश दिया।

कर्तार ने भवेश के बिल का उत्तरदायित्व ले लिया। बैरा समाधान पाकर चाय लाने चला गया। कर्तार समीप की कुर्सी पर बैठ गया। उसने भवेश की ओर अनुरोध से देखा—"चाय के साथ कुछ और नहीं लोगे ?"

"नहीं, अब आवश्यकता नहीं।" भवेश ने आंखें चुरा कर उत्तर दिया। दोनों हाथों की उंगलियों को पंजों में बांध कर कर्तार की ओर दृष्टि उठायी और अंग्रेज़ी में पूछ लिया, "मुझे क्या भूख से व्याकुल हो जाने पर भी कुछ खाने का अधिकार नहीं है ? कलाकार को भूख नहीं लगती ?"

कर्तार ने संकोच से विश्वास दिलाया, "वाह, कैसी बात कह रहे हो ! तुम जो चाहो···।"

भवेश ने आश्वासन पाकर क्रोध में थूक दिया और पूछ लिया—"कुछ बीड़ी-सिगरेट है ?"

उसकी उंगलियों में समाप्त प्राय: बीड़ी का टुकड़ा देख कर कर्तार को याद आ गया था—वर्ष भर पहले भवेश कवि-सम्मेलन, साहित्यिक गोष्ठी या किसी रेस्तरां में दिखायी दे जाता था, उसके हाथ में अच्छे-महंगे सिगरेट का डिब्बा रहता था। महंगी सिगरेट की जगह बीड़ी का अन्तिम, बिना तम्बाकू का भाग देखकर कर्तार का ध्यान भवेश के दयनीय वेश की ओर भी गया। भवेश के कपड़े बहुत अच्छे, प्राय: सिल्क के होते थे। इस समय वह बहुत मैले, मसले शरीर से बेनाप बुशशर्ट और पाजामे में था। बुशशर्ट में केवल एक बटन था, उधड़े हुये कालर और आस्तीनों से सूत निकले हुये थे। कर्तार ने सहानुभूति की टीस अनुभव की।

कर्तार ने कोट की जेब से सिगरेट की डिबिया निकाली। डिबिया खोल एक सिगरेट बढ़ाकर पेश की। भवेश ने सिगरेट होठों में ले ली। कर्तार ने स्वयं माचिस रगड़ कर भवेश की सिगरेट सुलगा दी। भवेश ने बहुत लम्बा कश लिया और कर्तार से आंखें बचाये रेस्तरां की दीवार पर लटके एक कैलेण्डर को देखता रहा।

कर्तार ने मौन तोड़ने के लिए पूछ लिया—"आजकल क्या लिख रहे हो ? बहुत दिनों से तुम्हारी चीज़ देखने का अवसर नहीं मिला।"

भवेश की दृष्टि कैलेण्डर पर ही रही। उसने पहले से भी लम्बा कश खींचा और नाराज़गी के स्वर में बोला—"नहीं, मैं नहीं लिखूंगा, अकृतज्ञ लोगों के लिए क्यों लिखूं, लिखने से मुझे लाभ ?"

वर्तमान का सबसे प्रतिभावान कलाकार भवेश नहीं लिखेगा—कर्तार के मन को आघात लगा।

भवेश के उत्तर, चेहरे की मुद्रा और वस्त्रों की दयनीय स्थिति से कर्तार दूसरा प्रश्न न कर सका। बिना पूछे भी वह अपने श्रद्धास्पद कलाकार के विषय में बहुत कुछ जानता था। भवेश की स्थिति और उसकी निराशामय विरक्ति भरे उत्तर ने कर्तार की स्मृति में अनेक बातें जगा दीं।

कर्तार ने भवेश से आंखें बचाये चाय का प्याला समाप्त किया। भवेश भी सामने रखा प्याला और सिगरेट समाप्त कर चुका था और निरुद्देश्य दृष्टि रेस्तरां की छत और दीवारों पर घुमाते हुए दोनों हाथों की उंगलियों को उलझाकर मरोड़ता जा रहा था।

कर्तार ने सिगरेट की डब्बी फिर भवेश के सामने कर दी। भवेश ने दूसरा सिगरेट ले लिया। कर्तार ने उसके लिए माचिस जलायी, उसी माचिस से अपना सिगरेट लगाकर उसने साहस किया—"क्यों नहीं लिखोगे, यह तो हमारे साहित्य का बहुत बड़ा दुर्भाग्य होगा!"

कर्तार ने कह तो दिया परन्तु उसने कल्पना भी न की थी कि वह अपने पुराने परिचित का ऐसा सामीप्य कभी पा सकेगा, उस मूर्धन्य कलाकार से यों बात कर सकेगा।

भवेश ने बहुत लम्बा कश खींचा, कर्तार की आंखों में सीधे देखकर खिन्न स्वर में बोला—"नहीं लिखूंगा, क्योंकि तुम लोग अधिकारी नहीं हो। जो समाज हीनमनोवृत्ति है, प्रपंच से कलाकार का तिरस्कार करता है, वह कला और कविता का अधिकारी नहीं है।"

भवेश से खिन्नता और निराशा भरा उत्तर पाकर कर्तार को बात बढ़ाने का साहस नहीं हुआ। उसने विनय से अनुरोध किया—"एक चाय और लो।"

"धन्यवाद! इस समय पर्याप्त ले चुका हूं।" भवेश ने सिगरेट की राख झाड़ी और कुछ झिझककर पूछा, "कुछ समय के लिए तुम्हारे साथ तुम्हारे मकान पर चल सकता हूं? मैं कुछ देर विश्राम के लिए लेटना चाहता हूं। मेरी तबीयत ठीक नहीं है। कल और आज सड़कों पर घूमते-घूमते थक गया हूं। पिछली रात पार्क में बेंच पर लेट कर बिताना चाहता था। राउण्ड करने वाले कांस्टेबिल ने वहां भी विश्राम नहीं करने दिया। रात की ओस और सर्दी, नदी किनारे रेत पर काटनी पड़ी। सुबह से धूप में घूम रहा हूं। सिर में भयंकर

दर्द है।" भवेश ने दोनों हाथों के अंगूठों से कनपटियों को दबा लिया। कर्तार का मन पिघल गया। उसने विनय से अनुरोध किया, "तुम मेरे यहां चल कर विश्राम करो।" कर्तार को कलाकार के प्रति घोर अन्याय के लिए लज्जा अनुभव हुई। समाज को साहित्य के अमूल्य रत्नों से निहाल करने वाले, समाज को आलौकिक सौन्दर्य से चमत्कृत करने वाले व्यक्ति की ऐसी अवस्था !

कर्तार ने फिर आश्वासन दिया—"इस गरीब के पास जैसा छोटा-मोटा स्थान है, प्रस्तुत है। जब तक चाहो, वहां विश्राम करो। सिर दर्द के लिए केमिस्ट के यहां से दवाई लेते चलेंगे।"

कर्तार भवेश को साथ लिये अपने मकान की ओर चल पड़ा। कर्तार, कुछ भवेश की अस्वस्थ और खिन्न अवस्था के कारण और कुछ असाधारण व्यक्ति के प्रति सम्भ्रम के कारण, रास्ता चलते मौन रहा। उसकी स्मृति में भवेश से सम्बन्धित बातें घूमती जा रही थीं।

तीन वर्ष पूर्व कर्तार की महत्वाकांक्षा और कल्पना में अपने भविष्य के सम्बन्ध में दूसरे ही चित्र थे—अध्ययन और साहित्यिक जीवन के। वह साहित्यिक चर्चा और व्यक्तियों की ओर आकर्षित रहता था। भवेश उसका सहपाठी था और साहित्यिक क्षितिज पर प्रकट हो गया था। उसने नवोदित, देदीप्यमान नक्षत्र की भांति सहसा ध्यान आकर्षित कर लिया था और साहित्य के मध्याकाश की ओर विस्मयजनक द्रुत गति से उठता जा रहा था। वह यूनिवर्सिटी और नगर की साहित्यिक गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों में मंच पर, बिशिष्ट व्यक्तियों में स्थान पाने लगा था। उसकी रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में विशेष महत्व से प्रकाशित होने लगी थीं। भवेश की विचित्र बातें और सनकी व्यवहार चर्चा का विषय बन गये थे।

कर्तार की साहित्यिक बन सकने की महत्वाकांक्षा और कल्पना के बुदबुद दरिद्रों के मनोरथों की तरह उसके हृदय में उठ कर विलीन हो गये। वह भवेश के अनुकरण का साहस न कर सका था। भवेश के प्रति उसकी स्पर्धा अपने सामान्य सामर्थ्य को स्वीकार करके प्रतिभा के आदर में बदल गयी। भवेश की उज्ज्वल प्रतिभा को यूनिवर्सिटी की शिक्षा और परीक्षा की सीमाएं बांध कर न रख सकीं। उसे आदर से एक प्रतिष्ठित पत्र के सम्पादकीय विभाग में स्थान दे दिया गया था। पत्र की व्यवस्था भी भवेश को अपनी प्रतिभा के लिए संकुचित क्षेत्र लगी।

भवेश को पत्र से मिलने वाले वेतन का क्या लोभ होता। लोग कहते थे—उसे पत्र की नौकरी की क्या परवाह ? वह कवि-सम्मेलनों में सहयोग देने के लिए पत्र के वेतन से चार-पांच गुना पुष्पांजलि के रूप में पा लेता है। भवेश भावना और आत्मा से कलाकार है। वह लक्ष्मी का दास नहीं, सरस्वती का वरद् पुरोहित है। रुपये-पैसे की कातरता से कोसों दूर···। भवेश अनेक चाकरियों को लात मार कर स्वतन्त्र साहित्यिक कलाकार बन गया था।

कर्तार ने बी० ए० पास करके सेक्रेटेरियेट में अपर ग्रेड क्लर्क की नौकरी पा ली थी। जीविका के लिए क्लर्की अपनाकर भी वह स्वान्तःसुखाय कविता और साहित्य का मोह न छोड़ सका था। भवेश को अपना परिचित और सहपाठी मानने के गर्व में उसके कृतित्व और साहित्यिक सफलताओं की खबर रखता था। कर्तार को संतोष और गर्व था कि भवेश बहुत ही कम समय में अपनी प्रतिभा और साहस से पुराने जमे हुए साहित्यिक महारथियों से भी आदर पाने लगा था।

भवेश ने अपनी विशिष्ट प्रतिभा से बहुत कम समय में मूर्धन्य सहित्यिकों में स्थान पा लिया था। सब ओर उसकी रचनाओं की चर्चा और मांग होने लगी थी।

लोगों का विचार था, भवेश अपनी प्रतिभा, कलात्मक सामर्थ्य और लोक से पाये आदर के बोझ को संभाल नहीं सका। भवेश को कवि-सम्मेलनों और साहित्यिक गोष्ठियों के इतने निमन्त्रण और सहृदय रसिकों के यहां संगति और आतिथ्य के लिए इतने अनुरोध मिलते रहते कि उन्हें स्वीकार करके पत्र के कार्यालय का कार्य और अनुशासन निबाह सकना असम्भव था। कभी कला-रसिकों और प्रशंसकों से घिरे रहने के कारण कार्यालय पहुंच ही न पाता था। कभी दोपहर बाद पहुंचता, कभी दोपहर में ही वहां से चल देता। कभी चार-छः दिन या सप्ताह भर कार्यालय जा ही नहीं पाता। ऐसी नौकरी में वह किस प्रयोजन अथवा आकर्षण से बंधा रह कर आदेश निबाहता और आंखें नीची रखता। पत्र के कार्यालय से उसे मिलता ही क्या था ! उतना खर्च तो वह किसी संध्या, बार में प्रशंसकों से घिर जाने पर ही कर देता था। आदर और पत्र-पुष्प के रूप में मिलने वाली भेंट वेतन से कहीं अधिक हो जाती।

साहित्यिक सम्मेलन और गोष्ठियां प्रमुख कलाकारों का सहयोग पाकर भी भवेश के बिना नीरस और असफल समझी जातीं। उसके लिए सभी

आयोजनों और पत्र-पत्रिकाओं के अनुरोध को निबाह सकना कठिन था। ज्यों-ज्यों उसकी रचनाओं का आदर और मांग बढ़ रही थी, उनका आर्थिक मूल्य भी बढ़ता जा रहा था। बहुधा वह सम्मेलन और गोष्ठी में सहयोग देने का आश्वासन देकर, अग्रिम भेंट अथवा मार्ग-व्यय स्वीकार करके भी अवसर पर उपस्थित न हो पाता। ऐसी घटना का कारण भवेश का असामर्थ्य ही न होता, बल्कि वह इसलिए भी न जाता कि उसकी अनुपस्थिति में लोग किस प्रकार छटपटायेंगे, आयोजन असफल रह जायेगा। अपने महत्व की ऐसी अनुभूति धन लाभ के संतोष से कहीं अधिक उन्मादक होती है।

भवेश का ढंग और व्यवहार बदल गया था। वह बहुत कुछ रजवाड़ों के बिगड़ैल राजकुमारों जैसा बन गया था। उसे कमी अथवा खर्च की चिन्ता ही क्या थी ! कला और साहित्य का आदर करने वाले उसकी आवश्यकता, सुविधा अथवा विनोद के लिए होड़ से व्यय करने में सौभाग्य और गर्व अनुभव करते थे। रुपये-पैसे की चिन्ता उसे धन के प्रति मोह अथवा संचय के लिए तो कभी थी ही नहीं। भवेश को अपने लिए खर्च करने का अवसर कम ही आता था। उसके प्रशंसक उसके आदर में खर्च करके संतोष पाते थे और वह अपनी वाहवाही करने वाले चापलूसों पर अपनी उदारता का प्रभाव डालने के लिए पैसा फेंकता था। कहीं पांव पैदल आने-जाने के लिए उसके पास समय कहां था ! किसी भी समय एक बार सवारी कर लेने पर रात पड़े तक सवारी उसके द्वार के सामने खड़ी रहती। बिल या किसी भी वस्तु का दाम देने के लिए नोट बढ़ा कर शेष की प्रतीक्षा में ठिठकना उसे अच्छा न लगता। वह अपनी प्रतिभा के अनुसार ही उदात्त और उन्मुक्त रहना चाहता था। उसके असाधारण व्यवहार की ख्याति चारों ओर फैल गयी थी। उस ख्याति के नशे के सरूर में उसकी भवें चढ़ी रहतीं।

भवेश गोष्ठियों और प्रशंसा सुनने में इतना व्यस्त रहता कि उसके पास नयी रचना के लिये समय ही न होता। पत्र-पत्रिकाएं उसकी रचनाओं के लिये अग्रिम भेंट भेजने पर भी निराशा पाकर उससे कुण्ठित हो गयी थीं। वह सम्मेलनों और गोष्ठियों में सहयोग देने के लिये सौ-सवा सौ की भेंट स्वीकार करना अपमान समझने लगा था। उसके लिये उचित सत्कार और दक्षिणा का प्रबन्ध साधारण गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों के आयोजकों के सामर्थ्य से बाहर हो गया और जो समर्थ लोग उसे उचित भेंट दे सकते थे, वे उसके

अहंकार से खिन्न हो गये थे।

भवेश अपने बढ़े हुये खर्च के कारण कठिनाई अनुभव करने लगा था परन्तु उसे अपनी ख्याति, सम्मान और कलात्मक सामर्थ्य का भरोसा था। उसकी कलम हिलते ही धन बरसा देगी। आवश्यकता में, सहायता के अनुरोध से दूसरों की ओर देखता भी तो दैन्य से नहीं, अपितु अपनी आवश्यकता-पूर्ति का अवसर देने के अहसान से। कुछ ही दिनों में भवेश को उधार मिलना कठिन ही नहीं असम्भव भी हो गया। उसकी ख्याति और प्रशंसा, आलोचना और अपवाद में बदलने लगी।

भवेश का प्रभाव और भाव साहित्य और कला के जगत में गिरने लगा तो उसकी संगति के लिये आतुर और उसके व्यय का बोझ उठाने में संतोष और गौरव मानने वाले कतराने लगे। भवेश से प्रायः ही रुपये की आवश्यकता की बात सुनकर उसके प्रति आदर-सत्कार की आतुरता वितृष्णा में बदलने लगी। लोगों ने कलाकार को जोंक उपनाम दे दिया। भवेश की संगति में पान-सिगरेट, चाय और नशा-पत्ता चलाने वालों ने उसे सूखा फूल समझ कर मधुमक्खी की तरह छोड़ दिया। लोग राह-बाजार में उसे देखकर कतरा जाते या न पहचानने के लिये आंखें चुरा लेते। भवेश का मन अभाव की जकड़न से, उससे भी अधिक अपमान की पीड़ा से विक्षिप्त और विकल रहने लगा। ऐसी अवस्था में रचना के लिये क्या प्रवृत्ति होती परन्तु उसे अपनी प्रतिभा और कलात्मक सामर्थ्य में अगाध और अखण्ड विश्वास था। उसे विश्वास था, उसके मस्तिष्क से प्रसूत भाव ही कला थे। वह अपने मस्तिष्क और हृदय को कला के अमृत के अजस्र स्रोत समझता था। वह कहता था, उसकी अभिव्यक्ति को नीरस बताना साहित्य के नियामक बन जाने वाले प्रतिभाहीन लोगों की ईर्ष्या और ओछापन ही था।

भवेश के व्यवहार से कुण्ठित साहित्य के धुरन्धरों और नियामकों ने अहंकारी साहित्यिक कुकरमुत्ते को शिक्षा देने का निश्चय कर लिया परन्तु भवेश सिर झुकाने के लिये तैयार न हुआ। उसके विरोधी भी दांत पीस कर उसे मिटाने पर तुल गये। पत्रों में भवेश की रचनाओं की विद्रूपमय और तिरस्कार-पूर्ण आलोचनाएं होने लगीं। पत्र उसकी रचनाओं को अस्वीकार कर देने लगे। साहित्यिक गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों में उसे गोलमाल या होहल्ला करके उखाड़ दिया जाता। भवेश की ख्याति की निर्मल ज्योत्सना उसके विरोधी

प्रचार की प्रचंण्ड धूप से श्रीहीन हो गयी। भवेश के व्यवहार का वैचित्र्य, स्नेह और आदर के स्थान पर उपहास और निन्दा का विषय बन गये। भवेश प्रशंसकों के समूह में गर्व से सिर उठाये नहीं, प्रायः अकेला, खोया-खोया-सा घूमता दिखायी देने लगा।

कर्तार का पारिवारिक स्थान दूर देहाती जिले में है। उसके जिले और कसबे के अनेक लोग और परिवार जीविका के लिये राजधानी में रहते हैं। राजधानी में नौकरी निबाहने के लिए उसे एक कमरा अपने परिचित परिवारों से बसे एक बड़े मकान में मिल गया था। कर्तार का कमरा बाज़ार से निकलती गली के मुहाने पर दूसरी मंजिल में जीने के साथ बाज़ार की ओर था। वह दफ्तर या बाहर जाते समय अपने दरवाजे पर ताला लगा जाता था।

कर्तार भवेश को लेकर अपने मकान पर पहुंचा।

कर्तार के कमरे की अवस्था और साज-सज्जा अकेले रहने वाले विद्यार्थी या क्लर्क के स्थान जैसी ही थी। कमरे में जीने के सामने दीवार के साथ छोटा पलंग था, बाज़ार की ओर खिड़की के साथ कोने में छोटी मेज़ और दो बिना बांह की कुरसियां। अकेले युवक की सुविधा और आवश्यकता का सामान, मेज पर टेबिल लैम्प, स्टोव, सुराही, दो गिलास,प्याले, प्लेटें आदि।

बिस्तर की चादर कई दिनों से नहीं बदली गयी थी। उसे अपने पलंग पर बिछे मैले, गंदले बिस्तर के कारण संकोच अनुभव हुआ। कुछ दिन पूर्व धोबी के यहां से लौटे कपड़े पलंग के नीचे बक्स पर ही पड़े थे। कर्तार ने क्षण भर के लिए भवेश को कुर्सी पर प्रतीक्षा करने का अनुरोध किया। धुली हुई चादर निकाली, बिस्तर की सलवटें दूर कर साफ चादर बिछा दी और भवेश को विश्राम के लिए लेटा दिया।

भवेश पलंग पर बिल्कुल सीधा, चित्त, निश्चल लेटा था, आंखें मुंदी हुई थीं। दर्द के कारण माथे को दोनों हाथों से पकड़े था। कर्तार ने एक कुरसी पलंग के सिरहाने खींच ली और बैठ गया। उसका मन ऐसे प्रतिभावान व्यक्ति की विपन्नता से भारी हो गया था। कुछ न बोल सका। भवेश माथे को दर्द के कारण हाथों से दबाता जा रहा था।

कर्तार मौन न रह सका। सहानुभूति से बोला—"माथा मैं दबा दूं! कहो तो कैमिस्ट के यहां से कोई बाम ले आऊं।"

भवेश ने पलकें आधी खोल सहानुभूति के लिए धन्यवाद देकर कहा—

"बहुत जर्जर अनुभव कर रहा हूं। तुम्हारे यहां कुछ ब्राण्डी या कोई दूसरी चीज हो तो आराम मिल सकेगा।"

मदिरा की आवश्यकता सुन कर कर्तार को हिचकिचाहट अनुभव हुई। साधारण संस्कारों को मानने वाले उसके परिवार और परिचित क्षेत्र में मदिरा हेय और निषिद्ध वस्तु मानी जाती है। उसे मदिरा के उपयोग और व्यवहार का परिचय भी नहीं था। वह केवल काव्य-जगत की मदिरा की उपमाओं और प्रभावों से ही परचित था परन्तु जनश्रुति से जानता था कि कवि और कलाकार साधारण व्यक्ति नहीं होते, वे बोतल की मदिरा के प्रयोग से भी नहीं हिचकते। कर्तार ने मन के संस्कार को दबाया। आचार-व्यवहार की मान्यताएं सभी अवस्थाओं और स्थितियों में सभी व्यक्तियों के लिए एक समान नहीं हो सकतीं। कलाकार साधारण व्यक्ति नहीं होता और भवेश जैसी विपन्न और रुग्ण अवस्था में था—औषधि के लिए ही सही।

कर्तार ने आश्वासन दिया, अभी प्रबन्ध करता हूं। कर्तार ने ब्राण्डी कभी नहीं खरीदी थी परन्तु जानता था, यह वस्तु कुछ विशेष दुकानों में ही प्राप्य होती है जहां 'वाइन स्टोर' लिखा रहता है। वह अपनी झिझक दबाकर ब्राण्डी की सबसे छोटी बोतल खरीद लाया।

कर्तार अपने कमरे में लौटा तो भवेश बिल्कुल निश्चल था। सिर को नहीं दबा रहा था। आहट पाकर भवेश ने आंखें खोल दीं। उसे नींद नहीं आयी थी। कर्तार ने कुर्सी पलंग के समीप कर दी, बोतल खोलकर कुर्सी पर रख दी, दवाई पी सकने के लिये अलमारी से एक प्याला उठाकर कुरसी पर रख दिया। भवेश ब्राण्डी की बोतल देखकर उठ बैठा था।

बोतल से प्याले में दो बार लेकर उसने आधी के लगभग पी ली और एक सिगरेट मांगकर सुलगा लिया, लेट कर पलकें झुकाये मौन सिगरेट पीता रहा। सिगरेट समाप्त कर वह फिर उठा, शेष ब्राण्डी में से आधी लेकर पी ली। एक और सिगरेट लिया और फिर लेटकर सिगरेट पीने लगा। दूसरा सिगरेट समाप्त करके उसने बोतल की शेष ब्राण्डी खत्म कर दी और कर्तार से फिर एक सिगरेट मांग ली। भवेश के गन्दुमी पीले चेहरे पर कुछ तमतमाहट और लाली आ गयी। आंखें गहरी हो गयीं। वह तीसरे सिगरेट से कश लेते हुये बहुत अस्पष्ट धीमे-धीमे कुछ गुनगुनाने लगा। कर्तार उसके शब्द समझ नहीं सकता था परन्तु अनुमान कर लिया, भवेश कुछ स्वस्थ अनुभव कर रहा था।

अपनी कोई कविता याद आ गयी होगी ।

कर्तार भवेश के समीप लगभग एक घण्टे से मौन बैठा था । भवेश ने तीसरा सिगरेट समाप्त कर फर्श पर डाल दिया तो कर्तार ने पूछा—"अब तबीयत कुछ ठीक है ?"

"थैंक यू, अब काफी ठीक हूं ।" भवेश ने भारी पलकें कर्तार की ओर उठा कर उत्तर दिया । वह पलंग पर पालथी से बैठ गया और कर्तार को सम्बोधन किया, "तुम ने बहुत आड़े में मुझे सहारा दिया है । सब ओर से प्रवंचना और द्रोह पाकर असहाय हो गया हूं । तुम से भेंट, एक चमत्कार हुआ ।"

कर्तार ने विनय से कहा—"नहीं, मैं तो कुछ भी नहीं कर सका । संतोष है कि तुम्हारी तबीयत अब कुछ ठीक है ।"

भवेश दीर्घ निःश्वास छोड़ कुछ कड़े स्वर में बोला—"मैं जानना चाहता हूं, तुम ने यह सहायता कठिनाई में पड़े पुराने परिचित व्यक्ति को दी है अथवा यह कलाकार के प्रति सहृदयता और आदर है ? स्पष्ट उत्तर चाहता हूं ।"

कर्तार को भवेश के निःश्वास से उबकाई उत्पन्न करने वाली अप्रिय गन्ध अनुभव हुई । उसके शब्दों और स्वर में नशे की लरज का आभास हुआ परन्तु उसने झिझक कर विनय से उत्तर दिया—"निश्चय ही मैं तुम्हारी प्रतिभा का, कलाकार का आदर करता हूं । तुम हमारे समाज और साहित्य का गौरव हो, मुझे भी तुम्हारे परिचय का गौरव है ।"

भवेश ने भारी पलकें यत्न से उठा कर कर्तार की ओर देखा और फिर दीर्घ निश्वास लिया—"मेरा अनुरोध है, तुन ने जिस सहृदयता और आदर से एक प्रताड़ित कलाकार को सहारा दिया है, उसे कला और साहित्य के प्रति दायित्व मान कर पूरा निबाह दो । मैं बहुत बड़ा बोझ नहीं बनूंगा ।"

कर्तार ने भवेश की बात को ब्राण्डी का अस्थायी प्रभाव समझ कर उसके अहंकार की ओर ध्यान न दिया, उसके प्रति आदर और उसकी विपन्न अवस्था में सहानुभूति से आश्वासन दिया—"तुम कुछ देर विश्राम करो । तुम्हारी तबीयत ठीक हो जायेगी । बताओ, इस समय क्या खाना चाहोगे ?"

भवेश ने गरदन उठा कर कहा—"रेस्तरां में पर्याप्त खा लिया है, भोजन की चिन्ता मत करो । मैं गम्भीर बात कह रहा हूं । स्पष्ट उत्तर चाहता हूं । तुम नहीं जानते, कलाकार ऐसी मामूली बातों की चिन्ता नहीं करते । नहीं जानते, कलाकार क्या चाहता है ?"

कर्तार ने झिझकते हुए कहा—"मैं कलाकार नहीं हूं, परन्तु कलाकारों का आदर करता हूं। विश्वास रखो, मैं जिस योग्य हूं, प्रस्तुत हूं।"

भवेश ने रीढ़ सीधी करके कहा, "मैं तुम से कला और साहित्य के अधिकार और सम्मान की रक्षा के लिए सहयोग चाहता हूं।" कर्तार ने भवेश के स्वर में नशे की लटक की ओर ध्यान न देकर आश्वासन दिया, "निश्चय, ऐसे काम में सहायक अथवा उपयोगी होकर मैं गौरव पाऊंगा।"

भवेश ने अपना हाथ बढ़ा दिया—"शाबाश, वचन दो!" कर्तार ने भवेश से हाथ मिला कर बचन देना स्वीकार कर लिया।

भवेश ने एक कश खींच कर फुंकार से धुआं छोड़ा—"बताता हूं। तुम जानते हो, आज मेरे व्यक्तित्व द्वारा कविता और कला का कैसा तिरस्कार हो रहा है।" उसने अपने सीने पर हाथ रखा, "मैं अपने व्यक्तित्व के पार्थिव रूप को समाप्त कर कविता और कला के आदर और सम्मान की रक्षा के लिए चेतावनी देना चाहता हूं। इस शरीर के बलिदान द्वारा कविता और कला के तिरस्कार का विरोध करना चाहता हूं। इस कार्य में तुम्हारा सहयोग चाहता हूं।"

कर्तार ने भवेश की नशे की अस्थायी खिन्नता और बहक में भी कलाकार की गरिमा अनुभव की और उसे सांत्वना दी—"ऐसे काम में मैं सब प्रकार सहायता के खिए तैयार हूं। कौन नहीं जानता, तुम तो बहुत पहले ही अपना जीवन और शक्ति साहित्य और कला के लिए अर्पण कर चुके हो। तुम ने किसी अन्य महत्वाकांक्षा और सफलता की चिन्ता ही नहीं की।"

भवेश ने मुस्कराने का यत्न किया—"ठीक है ··ठीक है···तुम मेरी बात समझ सकोगे परन्तु ईर्ष्या से जलने वाले मेरे विरोधी स्वीकार नहीं करना चाहते। तुम जानते हो, मैं अपना जीवन और शक्ति, कला और सरस्वती के लिए अर्पण कर चुका हूं। परन्तु सरस्वती और कला को संकीर्ण स्वार्थों का साधन बनाने वालों, हीन-मनोबृत्ति, प्रपंचकों और ईर्ष्यालु लोगों को मेरी सफलता असह्य है। तुम जानते हो, कौन नहीं जानता, मेरे साथ क्या-क्या किया गया!" भवेश की जिह्वा लड़खड़ा गयी, "यह तुम मत समझो कि मैं उन्माद में हूं।" भवेश ने तर्जनी से चेतावनी दी, "यह निश्चय मैं परसों कर चुका हूं—अवसर और साधन के अभाव में निश्चय पूरा न कर सका वरना तुम्हें समाचार-पत्रों में काले हाशिये से मिला होता। अब तक स्वार्थान्ध, हीन

मनोवृत्ति, ईर्ष्यालु, कला और सरस्वती को धोखा देने वालों की गर्दनें लज्जा और अनुताप में झुक गयी होतीं। आज रात बलिदान समापन्न करूंगा। परसों सुबह मेरी ओट में आदर पाने वाले उस कमीने ने मुझे धक्के देकर घर से बाहर कर दिया, भूख की परेशानी में मुझे अपनी एकमात्र सम्पत्ति एक सौ दस रुपये का कलम दस रुपये में बेच देना पड़ा। उस समय पीड़ा अनुभव हुई, अपनी अभिव्यक्ति के साधन को क्षुद्र अन्न के लिए बेच रहा हूं। मन को समझाया, कलम तो केवल लिपि द्वारा अभिव्यक्ति के संकेत मात्र बना सकता है, भाव का स्रोत मेरे हृदय और मस्तिष्क हैं, अभिव्यक्ति का साधन मेरी जिह्वा है।

"अन्त में शरीर को समाप्त कर देने का निश्चय करना पड़ा। उस समय न तो विष खरीद सकने के लिए पैसे शेष थे और न अपने शरीर को बलिदान कर देने का कारण बता सकने के लिए कलम और कागज का टुकड़ा था। निश्चय किया अभी और सहूंगा, प्रवंचना और अन्याय के विरोध की आवाज उठाये बिना नहीं मरूंगा। अब समय आ गया, तुम मुझे कागज और कलम दो, मैं अपने हाथ से लिखूंगा। मेरा हस्ताक्षर पहचानने वालों की कमी नहीं होगी। प्रवंचक देख लेंगे, मैंने पराजय स्वीकार नहीं की है।"

भवेश रुक-रुक कर बोल रहा था और, मानो थक जाने और बार-बार गला सूख जाने के कारण घूंट भर रहा था।

कर्तार भवेश को मौन रह कर विश्राम का अवसर देने के लिये उठ कर खड़ा हो गया और पूछा—"प्यास हो तो जल दूं?"

"प्यास-प्यास! तुम बात टालना चाहते हो!" भवेश ने कर्तार की ओर घूर कर देखा।

"अच्छा, तुम लेटो, मैं तुम्हारे खाने के लिये कुछ ले आऊं, स्वयं भी खा आऊं।" उसने घड़ी देख कर कहा, "देर से जाने पर होटल में ठीक नहीं मिलता।" भवेश के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कर्तार जीने से उतर गया। कर्तार होटल से खाना खाकर लौटा तो भवेश के लिए कुछ मीठा, नमकीन और बिस्कुट लेता आया।

कर्तार लौटा तो भवेश घोर निद्रा में बेसुध था, पुकारने पर भी कोई उत्तर न मिला। कर्तार के सामने समस्या थी, स्वयं कहां सोये! सोचा—भवेश के साथ सो जाये परन्तु पलंग तंग था, दोनों ही ठीक से न सो पाते। भवेश को हिलाने-डुलाने पर भी उसकी नींद नहीं टूटी। पलंग निवाड़ का था। कर्तार

ने भवेश को गद्दे सहित पलंग की पाटी की ओर लुढ़का कर बिस्तर का गद्दा उसके नीचे से खींच लिया। भवेश को पलंग पर रहने दिया। फर्श पर गद्दा बिछा कर नींद के लिए लेट गया। रोशनी बुझा देने पर भी काफी देर नींद न आयी। ऐसे जाने-माने कवि की यह अवस्था—जीवन-निर्वाह के लिए कलाकार को भी पार्थिव साधन चाहिए।

कर्तार प्रातः नींद खुल जाने पर कुछ समय आलस्य का सुख अनुभव करने के लिए पलग पर अंगड़ाइयां लेता रहता था। कमरे में स्टोव, चाय की पत्ती और चीनी होने पर भी बाजार से दूध लाकर चाय बनाने का झंझट टाल जाता था। छुट्टी के दिन अथवा किसी अंतरंग मित्र के आने पर ही स्वयं चाय बनाता था। गली से बीस कदम पर बाजार में तड़के भी चाय मिल जाती थी। उस दिन वह भवेश की चिन्ता में जल्दी ही उठ बैठा। ध्यान आया, रात भवेश की तबीयत ठीक नहीं थी, उसने कुछ खाया भी नहीं था। उसे उठते ही गर्म-गर्म चाय मिल जाने से आराम अनुभव होगा। स्टोव पर पानी उबलने के लिए रख दिया और दूध ले आया।

पानी खौल गया था। उसने शेव बना ली और पुरानी पत्रिकाओं के कुछ अंकों में खोज कर भवेश की रचनाएं सराहना से पढ़ने लगा। उसे भवेश की कविता 'हे तापस गुलाब' बहुत पसन्द थी। कविता को खोज कर पढ़ डाला। भवेश ने गुलाब को सम्बोधन किया था :

"हे गुलाब ! तुम्हारा फूल तुम्हारे तप का उद्‌गार है। तुम अपने फूल के रूप, गन्ध और रस से संसार को सुन्दर बना देते हो परन्तु संसार से तुम पाते क्या हो, केवल मल ! संसार में जो कुछ उपयोग से नष्ट हो जाता है, जो कुछ मनुष्य-पशु और पक्षी त्याग देते हैं, जो कुछ रोग का कारण बन जाता है, घृणित हो जाता है, असह्य हो जाता है, तुम उस हेय और हानिकारक को सहर्ष स्वीकार कर लेते हो। उस घृणित को स्वीकार करने की वेदना से तुम्हारा शरीर कांटों से भर जाता है; तुम उससे भी खिन्न नहीं होते। इस तप को निबाह कर तुम संसार को सब से अधिक सुन्दर, सुवासित और कोमल उद्‌गार देते हो।

मुझे किसी और से नहीं, तुम से ईर्ष्या है। मैं भी सब शारीरिक क्लेशों और मानसिक यन्त्रणाओं के कांटों को ओढ़ कर जीवन को प्रेरणा देने वाले कोमल, सुन्दर और सुवासित उद्‌गार दे सकूं।"

कर्तार के मन ने स्वीकार किया, यह कलाकार भी क्या गुलाब के पौधे की भांति नहीं हैं !

भवेश ने आंखें खुलते ही उबलता पानी और चाय का इन्तजाम देखा—"चाय मिल जायेगी, अहोभाग्य !"

कर्तार चाय बनाने लगा और भवेश से पूछा—"अब तबीयत कैसी है ?"

भवेश ने अपने माथे पर हाथ फेरा—"भारीपन तो है, गर्म चाय बहुत अनुकूल रहेगी।" भवेश ने चाय की प्याली समाप्त कर एक सिगरेट लिया और फिर एक प्याली और ली और कोहनी तकिये पर रख, हथेली पर माथा टिका, लेट कर सिगरेट पीने लगा।

कर्तार दफ्तर के मार्ग में ही नाश्ता या आहार कर लेता था। दफ्तर के लिए खुलने का समय हो गया था। उसने भवेश से कहा—"रात तुम ने कुछ नहीं खाया, तुम्हारे लिए लेता आया था परन्तु तुम्हें नींद आ गयी थी, तुम्हारी नींद खराब करना उचित नहीं समझा।" उसने मेज पर रखे रूमाल में बंधे आहार की ओर संकेत किया और पूछा, "यदि और कुछ चाहो तो ला दूं !"

भवेश ने रूखी लटों में उंगलियां चला कर उत्तर दिया—"अभी माथा बहुत भारी है, कुछ दर्द भी है, इच्छा होगी तो यह ही ले लूंगा। अभी विश्राम करना चाहता हूं।"

भवेश से तबीयत ठीक न होने की बात सुन कर कर्तार ने चिन्ता से उस की कलाई को स्पर्श करके देखा, ज्वर मालूम नहीं हुआ। पूछ लिया—"सिर दर्द है तो दवाई लाकर दे जाऊं ?"

"दवाई लेने जाओगे !" भवेश ने विरक्ति से कहा, "तुम्हें विलम्ब न हो रहा हो तो एक प्याला चाय और पिला दो। डिबिया में सिगरेट है ?"

कर्तार की डिबिया में एक ही सिगरेट शेष था, वह दिन भर में चार-पांच से अधिक सिगरेट न पीता था। कर्तार ने बाजार से एक डिबिया सिगरेट और माचिस लाकर पलंग के सिरहाने रख दी। दो प्याले चाय और बना दी और चलते हुए बोला—"तुम बिल्कुल विश्राम करो, धूप में न निकलना। कहो तो मैं छुट्टी लेकर लौट आऊं ?"

भवेश ने उंगलियों में थमे सिगरेट के धुएं की ओर देखते हुये कह दिया—"क्या करोगे छुट्टी लेकर ! मैं यहीं रहूंगा, कहीं नहीं जाऊंगा। परेशानी न हो तो अपना कलम मेज़ पर छोड़ जाओ।"

कर्तार दफ्तर से छुट्टी पाने पर अपने अभ्यस्त स्थान पर चाय पीने के लिये नहीं रुका। सोचा चाय घर में बनायेगा, भवेश को भी पिलायेगा···जाने उसकी क्या अवस्था होगी। सम्भव है मेरे कलम से कोई अमर रचना लिखी पड़ी हो—उसके कमरे में उसके ही कलम से लिखी गयी कोई चीज़ ! मार्ग में उसने भवेश के लिये दो सन्तरे खरीद लिये।

कर्तार लौटा तो कमरे के किवाड़ बन्द थे, परन्तु ताला नहीं लगा था। कर्तार के हाथों के दबाव से किवाड़ खुल गये। जो कुछ देखा, उस से आघात-सा लगा। भवेश प्रातः की तरह दाहिनी कोहनी के सहारे लेटा हुआ था। उसकी आंखें गुलाबी, पलकें बहुत भारी और चेहरे पर तमतमाहट थी। पलंग के साथ कुरसी पर नयी बोतल, रात खरीदी बोतल से दुगनी रक्खी हुई थी। खाली गिलास भी था और पानी की सुराही पलंग के समीप फर्श पर थी। कर्तार ने एक नज़र में देख लिया, बोतल ह्विस्की की थी। बोतल से एक तिहाई ह्विस्की निकल चुकी थी। भवेश की उंगलियों में थमा नया सिगरेट पुष्ट तार छोड़ रहा था। पलंग के नीचे सिगरेट की दो खाली डिबिया पड़ी थीं, तीसरी नयी खुली हुई डिब्बी कुरसी पर थी। कुरसी के ऊपर कुछ आने शेष पड़े हुये थे। कर्तार ने समझ लिया, वह भवेश की आवश्यकता के विचार से दस रुपये का एक नोट छोड़ गया था, उसमें से उतना ही शेष रह गया था। मन को चोट लगी, कुछ बोल न सका। उसे लगा जैसे भवेश अति कर रहा था परन्तु सहसा कुछ निश्चय न सका। रूमाल में बंधे सन्तरे मेज़ पर रख दिये। मेज़ पर लेटर पैड खुला पड़ा था, पैड का खुला पृष्ठ कोरा ही था। पैड पर पेन रखा था। समझ लिया, भवेश ने कविता नहीं लिखी। विरक्ति अनुभव हुई—पीता ही रहा है। कर्तार अपने और भवेश के लिये चाय बनाने की बात भूल गया।

कर्तार ने मेज़ के समीप पड़ी पलंग के पास खींच ली और कुसी पर बैठ गया। भवेश उसकी ओर ध्यान न देकर मौन निश्चल सिगरेट पीता रहा।

कर्तार ने भवेश को सम्बोधन किया—"अब क्या विचार है ?"

भवेश ने सिगरेट से एक और कश लिया। आंखें झपक कर कर्तार की उपस्थिति को स्वीकार किया और घूम कर, उसकी ओर बहुत स्थिर, गम्भीर स्वर में बोला—"विचार तुम्हें बता चुका हूं। तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा था।"

भवेश ने बोतल से गिलास में कुछ और ह्विस्की डाल ली। कर्तार की ओर

देखकर कहा—"जरा सुराही उठा कर थोड़ा जल दे दो।" उसने जल मिली ह्विस्की से दो घूंट भरे, सिगरेट का कश लिया और कर्तार की ओर देखा, "विचार तुम्हें बता चुका हूं, उसी के लिए तुम से वचन लिया है।" भवेश ने अपने बुश-शर्ट की जेब से चार तह किया हुआ कर्तार के पैड का कागज निकाला और कर्तार की ओर बढ़ा दिया, "लो, यह पढ़ लो।"

कर्तार ने कागज सीधा करके पढ़ा—"कविता और कला की आत्मा के नाम ! मेरे इस अन्तिम कार्य को आत्महत्या कहा जायेगा, समाज का कानून और पुलिस इसे आत्महत्या ही कहेंगे। वास्तव में मैं आत्महत्या नहीं कर रहा हूं। मेरी हत्या की जा रही। मेरी हत्या का उत्तरदायित्व समाज में साहित्य, कविता और कला के जीवित रह सकने के लिए असम्भव परिस्थितियों पर है। मैं अपने प्राणों को किसी सनक में नहीं, विवशता से न्योछावर कर रहा हूं। मैं इस समाज में जीवित नहीं रह सकता क्योंकि इस समाज में सरस्वती, कला और साहित्य त्रस्त और दलित है। उनके लिए स्थान नहीं है। इस समाज में आदर, महत्व और सामर्थ्य प्रपंच से रुपये-पैसे बटोर सकने का है, सरस्वती और कला का नहीं। जिस समाज में साहित्य और कला को व्यवसाय और दांव-पेंच की वस्तु और छिछले विनोद की चेरी बनाकर रखा जाये, उस समाज में सरस्वती और कला का आराधक कलाकार ससम्मान जीवित नहीं रह सकता। जो समाज साहित्य और कला का मूल्य नहीं जानता, जो समाज सरस्वती के पुरोहित को तिरस्कृत करता है, जो समाज कलाकार को जीवन की मामूली आवश्यकताओं के साधनों के लिये गिड़गिड़ाता देखना चाहता है, वह समाज कलाकार के श्रम के फल का अधिकारी नहीं। मैं सरस्वती और कला की उपेक्षा तिरस्कार के विरोध और कला और सरस्वती के प्रति उचित न्याय की मांग के लिये अपने प्राण न्योछावर कर रहा हूं।

"समाज एक कलाकार के लिये आंसू न बहाकर सरस्वती और कला के अंकुरों के पनप सकने योग्य परिस्थितियां बनाने की चेतावनी पाये। मेरे सहृदय मित्र और अन्तिम मेज़बान पर मेरे जीव की समाप्ति का कोई उत्तरदायित्व नहीं। मैं उससे पायी सहायता के लिये आभारी हूं।" —भवेश

कर्तार पत्र का अन्तिम भाग बहुत कठिनाई से, दांतों से होठों को काट कर पढ़ सका। पत्र पढ़ कर कर्तार ने कलाकार की निराशा के प्रति वेदना अनुभव की और उसके आत्महत्या के निश्चय से भय भी। उसने घरघराते

स्वर में कहा—"क्या व्यर्थ बातें करते हो, ऐसे हताश नहीं होना चाहिये।"

भवेश ने शेष गिलास तीन घूंटों में समाप्त कर सिगरेट से एक लम्बा कश खींचा। कर्तार की बातें सुनकर भवेश मौन रहा। विचारपूर्ण मुद्रा में होठों और नाक से धुंआ निकल जाने दिया और फिर स्वर संयत करने के लिये खांस कर बोला—"यह नशे और निराशा की विमूढ़ता नही है। सुनो, मैं ह्विस्की अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में मन और मस्तिष्क को स्थिर, स्वस्थ और अडिग रखने के लिये लाया हूं। बहुत सोच-विचार कर किया हुआ निश्चय है। यह निश्चय मैंने अपने व्यक्तित्व को परे रख कर, तटस्थ होकर साहित्य के प्रतिनिधि, कलाकार के उत्तरदायित्व से किया है। मैं अपने शरीर को कलाकार की आत्मा के तिरस्कार का माध्यम नहीं बनने दूंगा, यह मेरा अटल निश्चय है। निश्चय पूरा करने के लिए मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। तुम ने वचन दिया है, मेरे इस बलिदान का पुण्य तुम को भी होगा। कला और सरस्वती तुम्हारे प्रति भी आभारी होंगी।"

कर्तार ने विरोध में आशंका से प्रश्न किया—"मैं क्या कर सकता हूं?"

भवेश ने सुनने का संकेत किया—"सुनो, मेरा निश्चय है आज रात ही कार्य पूर्ण होगा। तुम पर इससे अधिक बोझ नहीं डालूंगा।"

कर्तार भवेश के चेहरे की ओर न देख सका। भवेश की निराशा के दुस्साहस से स्वयं उलझन में फंसने का आतंक अनुभव कर स्थिति सम्हालने के लिए बोला—"बोझ की क्या बात है, सब दिन एक से नहीं रहते, धैर्य रखो!"

भवेश ने तर्जनी उठा कर खिन्न स्वर में कर्तार को टोक दिया—"सुनो, अपनी कायरता छिपाने के लिए वितण्डा की ओट मत लो। मेरे पास उचित-अनुचित के तर्क की भूलभुलैया में पड़ने का समय नहीं है। मैं तुम से अन्तिम समय सहायता चाहता हूं। तुम ने स्वयं वचन दिया है। मैंने तुम्हारा विश्वास किया है। मैंने उस विश्वास के आधार पर ही तुम्हारी प्रतीक्षा की। मैंने तुम्हारा भरोसा न किया होता तो यह पत्र लिख चुकने क बाद कार्य पूरा कर चुका होता। इस पलंग पर बिना पीड़ा और भय अनुभव किये अन्तिम नींद सो गया होता। मैं कलाकार के कोमल स्वभाव के कारण पीड़ा, भय और असुन्दर से घृणा करता हूं परन्तु मैंने तुम्हें असुविधा से बचाने के लिए पीड़ा और भय भी सह लेने का निश्चय कर लिया है। इस कमरे में इसी पलंग पर मेरे समाप्त हो जाने से तुम पर कुछ असुविधा का संकट आ सकता था। तुम

पुलिस की तहकीकात के उत्तर देने की असुविधा में पड़ सकते थे।"

आतंक और विस्मय की जिज्ञासा से कर्तार के होंठ खुल गये। आंखें भवेश की ओर उठ गयीं परन्तु मुख से शब्द न निकला।

"जानना चाहते हो कैसे···?" भवेश ने तर्जनी उठा कर उत्तर दिया। नशे के प्रभाव से उसके स्वर की अस्पष्टता और लरज उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी।

"तुम दफ्तर चले गये थे, तब मेरे लिये अवसर था। यह पत्र लिख चुका था, दस रुपये थे। मुझे मालूम है अफीम और विष कहां मिल सकता है। बिना पीड़ा के सब से सरल उपाय वही था परन्तु मैं पैसे हाथ में होने पर भी वह न लाया। मन को स्वस्थ रखने के लिए ह्विस्की ले आया। बिना अधिक पीड़ा और भय के समाप्त हो जाने का बिल्कुल आधुनिक उपाय भी कमरे में मौजूद था।" भवेश ने टेबिल लैम्प में लगे बिजली के लम्बे तार की ओर संकेत किया, "उस लैम्प से तार निकाल कर दोनों सिरों को कलाई पर कस लेता और पलंग पर लेट कर स्विच आन कर देता। एक ही झटके में काम समाप्त हो जाता।"

कर्तार का शरीर सिहर उठा। जिह्वा की खुश्की निगलने के लिये घूंट भर कर बोला—"भवेश, तुम ने बहुत पी ली है। तुम नशे में, निराशा के क्रोध में ऐसी बातें कर रहे हो, होश में आओ! तुम्हारे जैसे जीनियस में साहस भी होना चाहिये, निराश मत हो!"

भवेश ने कर्तार की ओर देख कर मुस्कराने का यत्न किया। उसके हाथ का सिगरेट उंगलियों को आंच देने लगा था, उसने सिगरेट फर्श पर फेंक दिया—"तुम समझते हो, मैं उन्माद में हूं। बता चुका हूं, ह्विस्की मैं नशे के लिये नहीं लाया हूं। मेरा शरीर अब भी स्वस्थ नहीं है। कमज़ोरी अनुभव न हो इसलिये ह्विस्की ले आया हूं। मैं थोड़ा और लूंगा।"

भवेश ने बोतल से गिलास में लगभग एक औंस ह्विस्की डाल कर कहा—"मुझे शक्ति बनाये रखने के लिये इसे अन्तिम समय तक चलाना है। लाओ सुराही से थोड़ा सा जल दे दो।"

कर्तार ने मन की खिन्नता दबा कर सुराही से जल दे दिया। जल कुछ अधिक ही पड़ गया। भवेश गिलास की ओर देख कर क्षीण मुस्कराहट से बोला—"ओफ, इतना जल! मेरे अन्तिम क्षणों में खिन्नता दिखा कर कड़वाहट उत्पन्न न करो।" उसने गिलास में कुछ और ह्विस्की डाल ली। उसका स्वर

और भी अस्पष्ट हो गया परन्तु वह सहनशीलता की मुस्कान से बोलता गया, "मुझ में साहस की कमी है ? क्या साहस के अभाव में मृत्यु को स्वयं स्वीकार करना सम्भव हो सकता है ? तुम निरादर और अपमान सहते जाना ही साहस समझते हो ? निरादर और अपमान साहस के अभाव में कायर ही स्वीकार करते हैं। साहस का अभाव तुम में है, तुम मेरे साहस से आतंकित हो रहे हो।" भवेश ने फिर मुस्कराने का यत्न किया है, "सहायता के वचन को पूरा करने से कतराना चाहते हो···!"

भवेश ने गिलास से दो घूंट लेकर कहा—"मैं जीवन के अन्तिम क्षण में तुम से मामूली सी सहायता चाहता हूं।"

कर्तार ने अपना आतंक दबा कर विस्मय प्रकट किया—"इसमें मैं क्या सहायता कर सकता हूं ?"

भवेश गिलास कुरसी पर रख डिबिया से नया सिगरेट लेकर बोला—"भाई, मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता है। अन्तिम समय में सहानुभूति से मेरा हाथ पकड़ कर मृत्यु के स्थान तक ले चलो। मैं पुल के उत्तर के सिरे से नदी में गिरूंगा। हम ग्यारह बजे सुनसान हो जाने पर यहां से चलेंगे। उस समय तुम्हें कोई न देख सकेगा। जानते हो, पुल के उत्तर का किनारा बहुत गन्दा है। वहां बिजली का प्रकाश नहीं है। घुप अंधेरा रहता है। वहां मुंडेर पर खड़े होकर नीचे देखने से मन डूबने लगता है। सड़े पानी की दुर्गन्ध ऊपर तक आती है। अंधेरा और गन्दगी मुझे असह्य हैं। जीवन के अन्तिम क्षण में वह अनुभव नहीं चाहता। एक बार पहले भी ऐसे विचार से वहां गया था परन्तु उस स्थान से विरक्ति अनुभव करके लौट आया था, मृत्यु के समय मन खिन्न नहीं होना चाहिये। उस स्थान पर मुझे मुंडेर के पास पहुंचा कर तुम मेरी आंखों पर रूमाल से पट्टी बांध देना, आंखें मुंद जाने पर मैं कुछ न देख सकूंगा। तुम मुझे सहारा देकर मुंडेर पर चढ़ा देना और मेरा मुख जल की ओर कर देना। आंखें मुंदी रहने पर यदि मैं घबराहट और उतावली में मुंडेर से नदी में कूदने के बजाय पुल पर ही कूद गया तो कलाकार की आत्महत्या दुखान्त नाटक न बन कर एक व्यंग बन जायेगा।" भवेश ने अभय प्रकट करने के लिये मुस्कराने का प्रयत्न किया और लड़खड़ाते हाथों से नया सिगरेट सुलगा लिया।

कर्तार भवेश के प्रस्ताव से बहुत घबरा गया था। उसने स्वर दबा कर

विरोध किया—"क्या कह रहे हो ? मुझे हत्या करने के लिये कह रहे हो ? यह कैसे सम्भव हो सकता है !"

"मैं तुम से सहायता मांग रहा हूं।"

कर्तार ने उद्विग्नता से पूछा—"तुम होश में हो, यह सहायता की बात कर रहे हो या हत्या की ?"

भवेश ने उसकी आंखों में देखा—"मैं तुम से सहायता मांग रहा हूं। यह हत्या नहीं, यह मेरी आत्मा और लक्ष्य को हनन से बचाने का एकमात्र सम्भव उपाय है। हत्या मैं किसकी करना चाहता हूं ? मैं केवल इस शरीर को समाप्त कर देना चाहता हूं, क्योंकि इस शरीर द्वारा कला और सरस्वती का अपमान और तिरस्कार हो रहा है। मेरा व्यक्तित्व तो मेरी कला में है, उसे कोई मार नहीं सकेगा। इस तिरस्कृत शरीर से मुक्त होकर मेरी कला उचित आदर पा सकेगी। हीन मनोवृत्ति, ईर्ष्यालु लोग मेरी कला का तभी समुचित आदर करेंगे। मेरी कला अमर हो जायेगी। मैं अपने बलिदान से अपनी कविता को अमर बनाने के लिये तुम्हारी सहायता चाहता हूं, हत्या के लिये नहीं। तुमसे मैं हत्या के लिये नहीं कह रहा हूं, परिस्थितियों से असहाय बन गये मित्र के प्रति सहायता का कर्तव्य पूरा करने की याचना कर रहा हूं।"

कर्तार ने सिर हिला दिया—"चुप रहो ! तुम बेहोशी में हो, नशे में हो··· असम्भव बातें कर रहे हो।" कर्तार विचित्र संकट में फंस गया था। भवेश के प्रति आदर, सहानुभूति और करुणा क्रोध में बदल गये, "यह सब मेरे लिये सम्भव नहीं है, तुम जो चाहो सो करो।" उसने पछतावा अनुभव किया, किस मुसीबत को घर ले आया; नशे में जाने यह क्या उत्पात खड़ा कर दे ! उसने साहस और निश्चय बटोर भवेश को कड़े स्वर में सम्बोधन किया, "तुम्हें जो करना है करो, मैं ज्यादा बात नहीं चाहता। मेहरबानी करो और यहां से चले जाओ।"

कर्तार की धमकी सुनकर भवेश मुस्कराया और नशे की लरज से अस्पष्ट गोल-गोल स्वर में बोला—"तुम्हें भी देख लिया, कला और प्रतिभा के लिये तुम्हारा आदर देख लिया। अब मैं अधिक दुत्कार और यातना नहीं सहूंगा। तुम लोगों को क्षमा नहीं करूंगा—यदि तुम मेरे साथ चलने और सहायता देने से इनकार करोगे तो यह शरीर इसी कमरे में पलंग पर लाश बनेगा। विष न होने पर वह बिजली का तार तो है ! परन्तु मैं नहीं चाहता कि तुम समाज और

पुलिस की तहकीकात की जवाबदेही के संकट में पड़ो।" भवेश मुस्करा दिया।

कर्तार भवेश की धमकी से चिढ़ गया—"मैं कहता हूं तुम यहां से चले जाओ!" कर्तार ने स्वर दबा कर चेतावनी दी, "मैं अन्तिम बार कह रहा हूं स्वयं चले जाओ वरना मुझे जबरदस्ती करनी पड़ेगी।"

भवेश ने उसकी ओर देखा और मुस्कराया—"मुझे धमकी देते हो, अच्छा ...।" वह गिलास उठा कर समाप्त करने लगा परन्तु उछल पड़ा।

भवेश के हाथ से गिलास फर्श पर गिर कर टूट गया। वह पलंग की पाटी पर झुक कर ऊंचे स्वर से वमन करने लगा। कमरे में दुर्गन्ध भर गयी।

कर्तार ग्लानि और विवशता में कमरे से चले जाने के लिये जीने की ओर घूमा, उसी समय पड़ोस से पुकार सुनायी दे गयी—"कर्तार बाबू क्या बात है? क्या तबीयत खराब है?" पड़ोसी बिशन बाबू का स्वर था, समीप आते उनके कदमों की आहट भी सुनायी दी। कर्तार ठिठक गया, बिशन बाबू सहायता के लिये कमरे में चले आये तो क्या होगा! विकट परिस्थिति से माथे पर पसीना आ गया। वह तुरन्त जीने में हो गया और किवाड़ मूंद लिये।

बिशन बाबू ने अपना दरवाज़ा खोल लिया था, उन्होंने पूछा—"क्यों, क्या हुआ? कौन है?"

कर्तार ने संभल कर उत्तर दिया—"ऐसे ही मेरा मित्र मेहमान है। उसकी तबीयत खराब थी, वमन हो गया है।" वह जीना उतर कर आंगन में गया। बिहारीलाल की कोठरी के सामने से दोनों हाथों में राख उठायी और अपने कमरे में जाकर वमन पर डाल दी। कर्तार कमरे में कोलाहल के कारण पड़ोसियों के सामने फजीहत होने की आशंका से विवश था। कमरे में दुर्गन्ध थी। भवेश उसकी अवज्ञा कर अथवा नशे में शिथिल हो, उसकी ओर पीठ कर लेट गया था। कमरे में खड़े या बैठे रहना कर्तार के लिये सम्भव न रहा। वह परिस्थिति से विवश दांत पीस कर कमरे के किवाड़ उढ़का कर जीने से उतर गया।

कर्तार का मन ग्लानि से खिन्न था। भोजन के लिये ऐसी खिन्न अवस्था में होटल में नहीं गया। सोचा, कहां जाये? महान कलाकार को श्रद्धा से निमंत्रण देकर घर ले आया, वह मेरा पैसा बरबाद कर, मेरे कमरे में दुर्गन्ध फैला कर मेरे पलंग पर अधिकार जमाये है और मेरे लिए स्थान नहीं!

कर्तार विद्रूपमय असहाय अवस्था में फंस कर अपनी भावुकता के लिए

पछताता रहता था। अपनी ऐसी अवस्था दूसरों को बता कर वह उपहास का ही पात्र बनता। वह परिस्थिति का उपाय सोचने के लिये, बाजार से निकल कर सूने पार्क की ओर चला गया।

पार्क में सड़क के प्रकाश से दूर गुलाब की क्यारियों के समीप बेंच पर जा बैठा। कर्तार अपनी विकट परिस्थिति से उद्धार का उपाय सोचना चाहता था। उसका मन अपनी भावुकता के लिए अनुताप से खिन्न था। मैंने क्या मुसीबत सिर ले ली···ये श्रद्धा के पात्र, महान कलाकार—यही इनकी वास्तविकता है!

पार्क की वायु शीतल थी। चारों ओर फूलों की भीनी महक थी। वहां आकर भी कर्तार के मस्तिष्क से, अपने कमरे में भवेश के वमन से भरी दुर्गन्ध का प्रभाव नहीं गया। कर्तार लगातार दुर्गन्ध से खिन्न हो गया, मस्तिष्क से दुर्गन्ध का प्रभाव दूर करने के लिए सोचा—फूलों के और समीप हो जाये। उसने घूम कर क्यारियों की ओर नजर डाली। क्यारियों के समीप खाद का बड़ा ढेर लगा था। उसने पहचाना, वह दुर्गन्ध उसके कमरे में भरी दुर्गन्ध से भिन्न, सड़े हुए गोबर और दूसरे मैले की दुर्गन्ध थी। दुर्गन्ध भिन्न थी परन्तु अप्रिय और असह्य। कर्तार दुर्गन्ध से बचने के लिए गुलाब की क्यारियों से घिरी बेंच से उठ कर खुले लान की ओर चल दिया। दुर्गन्ध की विरक्ति से थूक दिया। उसी सुबह पढ़ी भवेश की पुरानी कविता 'हे तापस गुलाब' का भाव याद आ गया। मन कड़वा हो गया, उसने क्रोध की विरक्ति से फिर थूक दिया—खाद समेटने की, जमीन खोदने की सब तरह की कड़ी मेहनत हम लोगों के भाग्य में है, इन कलाकारों का काम है केवल फूलों पर मंडराना, उनके सौरभ और सौन्दर्य के गीत गाना···!

कर्तार को याद आ गया, वह पहले भी कई बार उस पार्क में उसी बेंच पर बैठ जाता था। चारों ओर फूलों से भरी क्यारियों को देखकर अपनी कल्पना और भावुकता को जगाने का यत्न करता था। अपनी भावुक कल्पना को पद्य-बद्ध कर देने अथवा किसी चमत्कारिक कल्पना को कहानी का रूप दे सकने के स्पप्न देखता था जिस से लोग फड़क कर वाह-वाह कर उठें। वह अपने प्रयत्न में असफल रहकर भवेश और दूसरे कवियों के पद गुनगुनाने लगता। भावपूर्ण कहानियां याद आ जातीं। उस समय भवेश और उसकी रचनाओं की याद, उसके वमन की दुर्गन्ध और दूसरों को अपना सेवक समझने के अहंकार की याद दिलाने लगी। चाहता था, घर लौट कर उसे लातें मार-मार कर अपने स्थान

से निकाल दे। पर कैसे···?

उसने घृणा से एक बार और थूक दिया। ये केवल बातों के बाजीगर हैं, भ्रम उत्पन्न करने की कलाबाजी ही इनकी कला है। बातों के अतिरिक्त ये क्या बनाते है किसी के लिए! इनकी प्रतिभा और सामर्थ्य केवल मानसिक विलासिता, दिमागी दिल्लगी और काल्पनिक तमाशबीनी जुटाना है और उसके मूल्य में चाहते हैं संसार का सब कुछ और समाज में सब से अधिक आदर।

कर्तार को अपनी सरलता और भावुकता के लिए पछताते हुए ख्याल आया—नशे में धुत अहंकारी मूर्ख से तर्क करने की क्या आवश्यकता! उस की बात मान कर उसे बाजार तक साथ ले आता और फिर मेरी बला से, वह जो करता, जहां जाता···। कह रहा था, घड़ी-दो घड़ी विश्राम करके पुल पर जायेगा। कर्तार ने कलाई पर बंधी घड़ी में समय देखा और लौट पड़ा।

कर्तार अपने कमरे में लौट आया। भवेश उसके पलंग पर गहरी नींद में था। कर्तार ने परेशानी अनुभव की, ऐसी अवस्था में क्या करे! भवेश को अपने पलंग पर रहने देना सह्य न था परन्तु खटका नहीं करना चाहता था।

पलंग के नीचे वमन पर राख पड़ी हुई थी। पिछली रात की तरह फर्श पर गद्दा बिछाकर लेट जाना भी सम्भव नहीं था। सुबह तक भवेश को अपने पलंग पर कैसे रहने देता! कर्तार ने भवेश को धीमे से पुकारा। नींद न खुलने पर कन्धे से पकड़ कर हिलाया। बहुत हिलाये जाने पर भवेश ने लाल-लाल आंखें खोल कर पूछा—"क्या है?"

कर्तार ने चेतावनी दी—"उठो! एक बज रहा है। तुम्हें पुल पर जाना है।"

भवेश ने कर्तार की बात समझने के लिए पलकें झपकीं और झुंझलाहट से उसका हाथ झटक दिया—"हटो परे!" और फिर करवट ले ली।

कर्तार ने उसे कन्धा हिलाकर फिर चेतावनी दी—"उठो, नहीं तो दिन निकल आयेगा, लोग आने-जाने लगेंगे।"

भवेश ने कर्तार का हाथ अपने कन्धे से झटक कर क्रोध से ऊंचे स्वर में फटकार दिया—"हटो परे, पागल हो! इस समय मेरी अवस्था और मूड आत्महत्या के लायक है?"

भवेश मुंह तकिये में दबाकर औंधा हो गया। कर्तार ने विवश, विस्मय से सिर पर हाथ मार लिये। यह क्या···यह भी कोई कला है···कविता है···कहानी है!

जीव दया

डायरी—१९५३, २४ अक्तूबर। रात्रि—९ बजे।

दौरे पर चलने से ठीक एक दिन पहले नाज़िर ने विवशता प्रकट की कि सहसा उसके जवान बेटे की तबियत बहुत खराब हो गई थी। उसकी एवज़ी में माथुर को साथ चलने के लिये कहा।

माथुर नयी पीढ़ी का नवयुवक है। उसमें पिछली पीढ़ी के मातहत लोगों का विनय नहीं। वह दफ्तर में टोपी पहन कर नहीं, नवजवान अफसरों की तरह पैंट-बुशशर्ट पहने नंगे सिर आता है। 'हुजूर' सम्बोधन नहीं करता है, केवल 'सर' कहता है। पुराने अफसरों को नयी पीढ़ी के मातहत लोगों की ऐसी स्पर्धा प्रायः पसंद नहीं आती परन्तु मुझे माथुर का व्यवहार खटकता नहीं। उसका एक कारण है। मेरा लड़का इंजीनीयरिंग की शिक्षा समाप्त करके ट्रेनिंग के लिये तीन वर्ष से यू० के० में है। वह भी गर्मी और बरसात में पैंट और बुशशर्ट पहनता था। उसका कद-काठ और चाल माथुर से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। यदि कुछ अन्तर पर मुख दूसरी ओर किये खड़ा हो तो सम्भव है मेरी पत्नी को भी भ्रम हो सकता है।

डाक बंगले में हम लोग दोपहर बाद पहुंचे। हम लोगों के पहुंचने से पहले ही चार-पांच मुवक्किल मौजूद थे। पहुंचते ही दरखास्तों पर गौर शुरू कर दिया। पांच बजे बैरे ने चाय तैयार होने की सूचना दी। उस समय फैसले लिखवा रहा था। चाय मेज़ पर ही मंगवा ली।

पुराने तजुर्बेकार नाज़िर, साहब लोगों के लिये चाय आने पर अदब से कमरे के बाहर चले जाते हैं। बरामदे में बीड़ी-सिगरेट पी कर या सुर्ती फांक कुछ देर सुस्ता लेते हैं। माथुर ने ऐसा नहीं किया। बोला—"सर, आपके लिये चाय बना दूं!"

मुझे खाने-पीने में साथ सदा ही अच्छा लगता है। माथुर के सौजन्यपूर्ण विनय को उत्साहित करने के लिये उत्तर दिया—"जरूर···तुम भी लो।" और बैरे से कह दिया—एक प्याला और ले आओ। माथुर ने मेरे साथ ही चाय पी।

माथुर का आत्मसम्मान-पूर्ण विनय अच्छा लग रहा था। संध्या भोजन के समय साथ के लिये उसे बुला लिया—"आओ, हमारे साथ ही खाना खाओ।"

माथुर ने विनम्र संकोच से निमंत्रण स्वीकार कर लिया।

संध्या भोजन के समय और उसके पश्चात् भी माथुर का नम्रतापूर्ण सहायता का व्यवहार बहुत अच्छा लगा। प्रातः बैरे ने नाश्ता लगाया तो उस समय भी माथुर को नाश्ते पर साथ बुला लिया। बैरे ने नाश्ते के लिये परांठे बनाये थे और मेरे लिये दो अंडे तल दिये थे। माथुर के साथ बैठने पर मैंने अपनी प्लेट से एक तला हुआ अंडा उठा कर उसकी प्लेट में रख दिया।

माथुर बहुत संकोच से बोला—"सर, यह आप लीजिये।"

मैंने कहा—"तकल्लुफ मत करो। तुम भी लो, और आ जायेंगे।" मैंने बैरे को पुकार लिया परन्तु माथुर ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा, "सर, मैं अंडा नहीं लेता।"

विस्मय प्रकट किया—"रात तुम ने मुर्गा तो खाया था, अंडा नहीं लेते हो। गुड़ खाओ और गुलगुलों से परहेज़।"

माथुर ने कुछ झिझक से कहा—"सर, मैं वैजीटेरियन नहीं हूं पर अंडा नहीं ले पाता हूं।"

प्रश्न किया—"क्यों···क्या डाक्टर ने मना किया है, अंडे से एलर्जी है?"

माथुर ने मेरी और कातरता से देख कर उत्तर दिया—"सर, डाक्टर ने तो मना नहीं किया। अंडे से मुझे मेंटल एलर्जी है।"

विस्मय प्रकट किया—"यह मेन्टल एलर्जी कैसी?"

माथुर ने अपने हाथ के नाखूनों की ओर देखते हुये उत्तर दिया—"सर, एक घटना का प्रभाव है···उस स्मृति के कारण मन नहीं चाहता।"

मैंने विस्मय से आग्रह किया—"कैसी घटना? तुम्हें संकोच न हो तो बताओ, हम भी सुनें।"

माथुर ने कण्ठ का अवरोध निगल कर उत्तर दिया—"सर, ऐसे ही··· लड़कपन की एक घटना है। अंडे देख कर अथवा उसके प्रसंग से ही याद आ जाता है और मैं अंडा नहीं ले पाता हूं।"

माथुर के स्वर में ऐसी आर्द्रता आ गयी थी कि मन को छू गयी। मैंने बैरे को पुकार लिया। बैरे के आने पर माथुर के और अपने सामने रखे अंडे को उठा ले जाने के लिये कह दिया।

माथुर मेरे इस व्यवहार से बहुत द्रवित हो गया। क्षमा-याचना के स्वर में बोला—"सर, अपनी अभ्रदता के लिये मुझे बहुत खेद है। आप अवश्य लीजिये।"

मेरे मुख से निकल गया—"बेटे, फिक्र न करो। अंडा खा लेने, न खा लेने से कुछ बन-बिगड़ नहीं जाता। तुम बहुत भले नौजवान हो। संकोच न हो तो वह घटना हमें भी बताओ।"

माथुर भावोद्रेक को वश में करने के लिये मुझ से आंख बचा कर संयत होकर बोला···

"सर, उस समय मेरी उम्र बहुत ही कम थी। आठवें दर्जे में पढ़ता था···" माथुर ने अपने को सम्भाला, फिर एक बार स्वर को संयत कर बोला, "हमारे स्कूल में एक बहत ही धर्मात्मा और कृपालु मास्टर थे। वे बहुत ध्यान से और मेहनत से पढ़ाते थे, समझाने का ढंग भी उनका बहुत ही अच्छा था। सभी विषय पढ़ा देते थे। परीक्षा से दो-तीन माह पहले कुछ विद्यार्थी ट्यूशन के लिये उनके घर पर पढ़ने के लिये आ जाते थे। कोई विद्यार्थी गरीब होता और किसी विषय में कमज़ोर होता तो स्वयं ही पढ़ने आने को कह देते और उससे फीस नहीं लेते थे। मास्टर जी हमारी आर्थिक स्थिति से परिचित थे। मैं छठे दर्जे में था तो मेरे पिता ने उसी गली में मकान ले लिया था। मैं हिसाब में कमज़ोर था। मेरे पिता ट्यूशन को फीस नहीं दे सकते थे। उन्होंने मुझे कृपा-भाव से दूसरे विद्यार्थियों के साथ आकर पढ़ने के लिये कह दिया था।

"मास्टर जी की पत्नी भी स्वभाव की बहुत अच्छी थी। गली के लड़के-लड़कियां 'चाची' पुकारते थे। मैं प्रायः उनके यहां चला जाता था। गली के नल से पानी की गागर भर देता या कभी आवश्यकता होती तो बाज़ार से सौदा-सुलफ ला देता।

"सर, मास्टर साहब बहुत धर्मात्मा और भले आदमी थे परन्तु भाग्य की बात उनके बाल-बच्चे जीवित नहीं रह पाते थे। मास्टरनी जी ने मेरी माता को बताया था, उनके एक लड़का और एक लड़की वर्ष पूरा होने से पहले ही गुजर गये थे। हम लोगों के आने के बाद उनके एक लड़का और हुआ। मास्टरनी जी उस लड़के के स्वास्थ्य के प्रति बहुत ही चिंतित रहती थीं।

मास्टर जी भी उसे बहुत प्यार करते थे। मास्टर जी प्रातः या संध्या घर पर रहते तो लड़के को कंधे पर लिये रहते। उसे 'हरि ओम्' बोलना सिखाते। संध्या समय हम लोगों को ट्यूशन पढ़ाते थे, तब भी बच्चा उनकी गोद में या आस-पास खेलता रहता।

"सर, मार्च में हम लोगों की परीक्षा समाप्त हुई। उस समय मास्टर जी का लड़का बीमार हो गया। मास्टर जी लड़के को डाक्टर के पास ले गये। वे लौटे तो बहुत ही उदास थे। डाक्टर ने लड़के को निमोनिया बताया था। दो दिन बाद लड़के की अवस्था बिगड़ गई। मास्टर जी बड़ी आयु के एक अनुभवी डाक्टर को बुला कर लाये। डाक्टर साहब रिटायर होकर प्रैक्टिस छोड़ चुके थे। वे पूजा-पाठ में लगे रहते थे। वे कहीं जाते नहीं थे परन्तु मास्टर जी के प्रति सद्भावना के कारण उनके यहां आये।

"सर, बीस-इक्कीस वर्ष पूर्व की घटना है, उस समय पैनिसिलीन के इंजेक्शन तो थे नहीं।"

मैंने समर्थन किया—"ठीक कह रहे हो। पैनिसिलीन तो दूसरे महायुद्ध के समय ही पापुलर हुई थी।"

माथुर ने कहा—"यस सर, आप जानते हैं उस समय निमोनिया दुसाध्य रोग होता था। बच्चे की सांस तेज चल रही थी। बुजुर्ग डाक्टर साहब ने बच्चे को ध्यान से देखा। उनके चेहरे पर चिंता की मुद्रा देख कर सभी चिंतित हो गये। डाक्टर साहब ने पहला नुस्खा बदल कर नया नुस्खा लिख दिया और बोले—"इस दवाई का एक छोटा चम्मच एक-एक घंटे बाद देते रहिये। भगवान की कृपा का भरोसा कीजिये।" वे कुछ झिझक कर फिर बोले, "आप एक काम कीजिये। मुर्गी का एक अंडा कटोरी में फेंट लीजिये और बच्चे के सीने और सीने के पीछे पीठ पर लेप कर दीजिये। भगवान चाहेंगे तो सब ठीक हो जायेगा।" मास्टर जी आदर से डाक्टर साहब को गली के मोड़ पर खड़ी सवारी तक छोड़ने के लिये चले गये।

"...सर, गली में सभी जानते थे कि मास्टर जी आर्यसमाजी थे और उन्हें मांस-मछली इत्यादि से सख्त परहेज था। पड़ोस में कायस्थों के घर अधिक थे। हम लोगों के यहां कभी मांस पकता था तो मास्टर जी की भावना के आदर से उन्हें पता नहीं लगने देते थे। मास्टर जी के गली के मोड़ से लौटने के पहले ही मैंने मास्टरनी से पूछा—"चाची, मैं अंडा ले आऊं ?"

"मास्टरनी जी की ग्रीवा झुकी हुई थी। मुख से कुछ न बोल सकी, आंचल से आंखें पोंछ लीं। उनकी ग्रीवा कुछ और झुक गयी। मैंने स्वीकृति का संकेत समझा।

"सर, हमारी गली के सामने ही बाजार के दूसरी ओर गरीब मुसलमानों के पांच-छः मकान थे। वहां एक पोस्टमैन था। मेरे पिता जी पोस्ट आफिस में क्लर्क थे। पोस्टमैन से परिचय था। उसके यहां दो मुर्गियां थीं। सर, मैं तुरन्त पोस्टमैन के यहां गया। उसकी बीबी से भी परिचय था। उससे बात की। बच्चे की बीमारी की बात सुन कर उसने तुरन्त अंडा ला दिया।

"सर, मैं अंडा लेकर मास्टर जी के यहां पहुंचा तो वे डाक्टर साहब को विदा करके लौट आये। बच्चे की चिंता में उनकी आंखें गुलाबी हो रही थीं। मेरे हाथ में अंडा देख कर उनके मुख से निकला—"यह क्या!" और उन्होंने बीमार बच्चे की खाट पर बैठी मास्टरनी की ओर देख पूछा—"तुमने मंगाया है?"

"मास्टरनी की गर्दन और अधिक झुक गयी। मास्टर जी की आंखें तरल हो गईं। वे बोल न सके परन्तु तर्जनी हिला कर निषेध का संकेत कर दिया।

"सर, दुख और लज्जा से मेरी गर्दन झुक गई। दृष्टि मास्टरनी जी की ओर गई। उन्होंने आंचल आंखों पर रख लिया था। उनकी पीठ फक्क-फफक कर रोने के कारण हिल रही थी। मैं लज्जा और परिताप से गर्दन झुकाये अंडा पोस्टमैन के घर लौटाने चला गया। पोस्टमैन की बीबी ने अंडा लौटा देने का कारण पूछा तो उसे कठिनता से ही उत्तर दे सका। मुख विस्मय से खुला रह गया और आंखें फटी-सी। मुंह से निकला—"...या परवरदिगार!"

माथुर से सुनी बात से मन पर आघात लगा परन्तु उसे उत्तर दे दिया—"ठीक कह रहे हो, अपने विश्वास और निष्ठा की बात है।"

माथुर चुप नहीं हुआ, भावोद्रेक के स्वर में बोलता गया—"सर, संध्या तक बच्चे की सांस और तेज हो गयी। पड़ोस के लोगों ने मास्टर जी को समझाने का प्रयत्न किया—बच्चे के जीवन का प्रश्न है। मास्टर जी आंसू नहीं रोक पा रहे थे परन्तु उन्होंने दृढ़ता से उत्तर दिया—"उस सर्वशक्तिमान, न्यायकारी को जो मंजूर है, वही होगा। जैसे मेरा बच्चा है, वैसे ही अंडा पक्षी की सन्तान है। मैं अपने बच्चे के लिये दूसरे के बच्चे के प्राण कैसे ले लूं!"

"मेरे पिता जी और कई लोग रात भर मास्टर जी के यहां रहे। दूसरे दिन प्रातः बच्चे की सांस बन्द हो गयी।"

मैंने माथुर के भावोद्रेक के प्रति सहानुभूति में कहा—"हमने कहा था न, विश्वास की दृढ़ता का प्रश्न है।"

माथुर बोलता गया—"सर, मास्टर जी ने तो इस चोट को धैर्य से सह लिया परन्तु बच्चे की मां बीमार पड़ गयी। उसे ज्वर-खांसी आने लगी। ज्वर तीन मास तक न उतरा। डाक्टर ने बताया, मास्टरनी जी को तपेदिक हो गया था और बीमारी काफी बढ़ गयी थी। इलाज चलता रहा परन्तु मास्टरनी जी की निर्बलता बढ़ती गयी। मास्टर जी ने फिर बुजुर्ग डाक्टर को बुलाया। डाक्टर साहब बच्चे की बीमारी में अण्डे का लेप न किये जाने की बात और उसका परिणाम जानते थे। नुसखा लिख कर बहुत संकोच से बोले—"मास्टर जी, आप दवाई पूछते हैं तो हमारे ख्याल में तो 'काड लीवर आयल' दिया जाना चाहिये। आपको स्पष्ट बता देते हैं कि मछली का तेल होता है।"

"सर, मास्टर साहब कई दिन तक चिन्ता में रहे। सब पड़ोसियों ने उन्हें समझाया, यह तो दवाई है, बाज़ार में बन्द बोतल में मिलेगी। तुम्हें तो कुछ करना नहीं है। मनुष्य के प्राणों का प्रश्न है"'।

"मास्टर जी ने पराजय स्वीकार कर उत्तर दिया—"डाक्टर कहता है, आप सब लोग कहते हैं, हम कुछ नहीं कहेंगे, वे जो चाहे करें।"

मैंने उत्सुकता के निश्वास से पूछा—"तो···।"

माथुर बोला—"सर, मास्टरनी ने 'काड लीवर आयल' खाना स्वीकार न किया। पड़ोसियों के समझाने पर उन्होंने कहा—"हमारे बच्चे के लिये अधर्म था तो हमारा क्या है। हम किसके पाप की गठरी सिर पर बांध कर ले जायें ···। मास्टरनी जी भी बच न सकीं।"

मैंने माथुर को उत्तर दिया—"भाई, जीव दया एक धार्मिक विश्वास है। धर्म की परीक्षा संकट में ही होती है।"

माथुर फिर भावोद्रेक से होंठों को दांतों में लेकर बोला—"सर, क्षमा कीजिये, यह भी तो कहा जाता है कि हमारे प्रत्येक श्वास से सहस्रों जीवाणुओं की हत्या हो जाती है। सर, यह भी तो सोचा जा सकता है कि मनुष्य का धर्म, उसे भगवान और प्रकृति द्वारा सौंपे हुये उत्तरदायित्व···आत्म-रक्षा, अपने आश्रितों तथा अन्य मनुष्यों की रक्षा का धर्म निबाहना है। शेष चिन्ता भगवान और प्रकृति स्वयं कर लेंगे।"

माथुर मेरी ओर जिज्ञासा की कातर दृष्टि से देख रहा था। उसे उत्तर

देना आवश्यक था इसलिये कहा—"भाई माथुर, धर्म को समझ-पहचान कर उसकी रक्षा हो सकती है। ऐसे द्वंद में मनुष्य अपने तर्क पर कहां तक भरोसा कर सकता है। तर्क का तो अन्त नहीं इसलिये धर्म के सम्बन्ध में विश्वास का भरोसा करना पड़ता है।"

माथुर मेरी ओर कातर विस्मय से देखता मौन रह गया।

माथुर से हुई बातचीत दिन भर मेरे मस्तिष्क में गूंजती रही। रात्रि साढ़े दस बजे यह पृष्ठ लिख रहा हूं, तब भी माथुर की जिज्ञासा से व्याकुल दृष्टि स्मृति में प्रखर है। जानता हूं, मेरे उत्तर से उसका समाधान नहीं हुआ था, वह केवल मेरी आयु और पद के विचार से मौन रह गया था। इस समय मैं स्वयं भी माथुर की दुविधा को समझ पा रहा हूं; दया और धर्म की कसौटी क्या मानी जाय! मास्टर जी के पुत्र की चिकित्सा के लिये मुर्गी का अण्डा तोड़ देना दया होती अथवा अण्डा न तोड़ना दया थी।

चोरी और चोरी

इस रहस्य की चर्चा में नगर, बाज़ार, मुहल्ले और व्यक्तियों के नाम न बताने ही उचित हैं। यदि नामों के अभाव में सर्वनामों के ही प्रयोग से आप को कुछ उलझन या असुविधा भी हो तो औचित्य की दृष्टि से उसे क्षम्य समझें।

हावड़ा स्टेशन पर अपने नगर का टिकट खरीद लेने से पहले उसके मन में काफी समय विकट ऊहा-पोह और दुविधा रही।···पत्नी और बेटे को छोड़े हुये इकत्तीस वर्ष हो गये थे। इतने समय बाद उनके सामने पहुंचना ठीक होगा? इतने वर्ष पश्चात अपने घर, मुहल्ले और नगर में लौट चलना उचित होगा?·· पिता तो अब क्या रहे होंगे! परिचय देने पर भी वे लोग उसे पहचान सकेंगे?···पहचान कर चकित तो होंगे···उनका व्यवहार कैसा होगा? ···वह बात क्या अब भी लोगों को याद होगी?

उसने बरमा पहुंच कर, घर छोड़ने के दो वर्ष बाद अपने पिता और पत्नी की व्याकुलता के विचार से एक पत्र लिख कर अपने सकुशल होने और अच्छी नौकरी पा लेने का समाचार घर भेज दिया था। पिता का उत्तर भी मिला था।

बरमा पहुंच कर उससे एक और भूल हो गयी। वह भूल पिता को बता नहीं सकता था। लज्जा और संकोच के कारण घर दूसरा पत्र लिखने का साहस न कर सका। जैसी नौकरी वह अपने नगर में, अपने मुहल्ले के मकानों और मन्दिर के मालिक ठेकेदार की कर रहा था, वैसा ही काम उसे मांडले में इमारती लकड़ी के एक बड़े व्यापारी के यहां मिल गया था।

वह छब्बीस-सत्ताइस की आयु में अपने घर और समाज से हज़ारों मील दूर था। अपने समाज और पड़ोसियों की आलोचना का भय नहीं था। उसे

अपने आचरण-व्यवहार के लिये किसी की सम्मति की चिन्ता नहीं थी। ऐसी अवस्था में वह यौवन से उफनती आंखों और सम्पूर्ण भाव-भंगिमा में कामना का आमंत्रण और दान लिये बरमी सुन्दरी के सम्मोहन से किसी तरह नहीं बच सका परन्तु अपने पुरोहित पिता को और अपने पांच वर्ष के बेटे की मां को, म्लेच्छ स्त्री ग्रहण कर धर्म और जाति से च्युत हो जाने का समाचार कैसे देता? उसके पिता, पत्नी और स्वयं उसकी दृष्टि में भी म्लेच्छ स्त्री से विवाह का अपराध उसकी पहली भूल से कहीं गुरुतर था। अब वह घर से क्या और कैसे सम्बन्ध रखता! वह अपने जन्म के नगर और घर को भुला कर अपना नया घर-संसार बनाने में लग गया। असफल भी नहीं रहा। दो ही वर्ष बाद वह नौकरी छोड़ कर मांडले में अपना छोटा-मोटा रोज़गार चलाने लगा। मकान खरीद लिया था परन्तु मन की गहराई में किसी दिन जन्म के नगर और संसार में पहुंच सकने की कल्पना बनी रही इसीलिये वह विदेश में अपनी कमाई को स्थायी सम्पत्ति में न लगा कर नगदी बटोरता रहा।

दूसरे महायुद्ध के समय जब बरमा पर जापान ने आक्रमण किया, उसकी दोनों बरमी लड़कियां अपने-अपने घर बसा चुकी थीं। जापानियों के पहले ही हवाई हमले में उसका मकान गिर गया। उसकी रुग्णा पत्नी दब कर मर गई। वह विदेश में सब कुछ गंवा देने और प्राण देने के लिये क्या ठहरता? जो कुछ सम्भव था, समेट कर स्वदेश की ओर भागा परन्तु मन ऊब-डूब कर रहा था।

संसार में अपने घर के अतिरिक्त उसके लिये और स्थान कहां था! पर जहां से भागने के लिये विवश हो गया था, वहीं कैसे लौट जाये?···पिता शायद नहीं रहे होंगे···पत्नी···बेटा···बेटा अब छत्तीस वर्ष का जवान मर्द होना चाहिये। उसे अपने भाग जाने वाले पिता की याद होगी?···इकत्तीस वर्ष बाद भी मुहल्ले के लोगों को उसकी याद होगी···अपने तत्कालीन पड़ोसियों और मुहल्ले वालों के नाम और आकृतियां याद आने लगीं।···उसकी उस भूल पर कैसी दुर-दुर और छीः छीः हुई थी!···किसी को मुंह दिखा सकना सम्भव न रहा था।···क्या अब भी लोगों को मेरी और उस बात की याद होगी? मुहल्ले में अतीत की स्मृति की आशंका, उसके घर लौटने की इच्छा और साहस को ढा देती थी। उसने निश्चय और विश्वास करना चाहा—इतने वर्षों तक मुहल्ले और घर से मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहा? वे लोग कभी के मुझे रो-धोकर भूल चुके होंगे।

उसके मन में आशंका उठ आती—यदि लोग नहीं भूले होंगे, तो फिर वही छीः छीः और दुर-दुर, चोर-चोर।···अपमान और बदनामी, जिसके कारण घर-नगर छोड़ना पड़ा था।

अब जहां दाम दूं, वहीं मेरे लिये जगह है, वहीं मेरा घर है···।

दो बार घर बन कर भी जब नहीं रहा तो घर और आश्रय मेरे भाग्य में है ही नहीं परन्तु लम्बी, दुस्साध्य यात्रा के बाद उसके मन और शरीर की अवस्था ऐसी थी कि सराय और होटल में विश्राम अनुभव नहीं कर सकता था। मकान और कोठरी किराये पर ले लेने से ही काम नहीं चल सकता था, उसे संभाल और आश्रय की आवश्यकता थी।

आहत मन और अस्वस्थ शरीर की अवस्था में उसे एक और चिन्ता अपने नगर की ओर धकेल रही थी। बिगड़े हुये स्वास्थ्य में किसी भी समय शरीर का अन्त आ जाने पर वह लावारिस मर जायेगा, अपनी इकत्तीस वर्ष की कमाई किसे सौंप जायेगा? घर में छोड़े हुये पांच वर्ष के बेटे का चेहरा स्मृति में कौंध जाता—वह चेहरा उसे भूला कब था? उसके बेटे की सुघड़ता और बाल-लावण्य की चर्चा आस-पास के मुहल्लों तक में थी—गदबदा, गोल-मटोल शरीर, सलोना-गन्दमी प्यारा-प्यारा चेहरा, बड़ी-बड़ी आंखें, घुंघराली लटें। लड़के की मां और दादी नज़र लग जाने के भय से सदा चिन्तित। टोने-टोटके और मनौतियां करती रहती थीं। मन के आकाश में छाये व्यथा के घटाटोप बादलों में से पांच वर्ष के बेटे का चेहरा चांद की तरह झांक जाता था। निराशा के अन्धकार में चांदनी सी चमक जाती—मेरा कोई क्यों नहीं है? मेरा बेटा है···छत्तीस वर्ष का जवान होगा। उसकी मां भी होगी, यही पचास-इक्यावन की होगी। बेटा क्या कर रहा होगा?···अपने दादा की तरह पुरोहित-पुजारी ही बना होगा अथवा इस ज़माने पढ़-लिख कर कुछ और···जाकर ही पता लगेगा। वह अपने पुत्र और उसकी मां को एक बार देखे तो! उठती जवानी में अपने पुत्र की मां से पायी सेवा और सन्तोष एक बार और अनुभव कर सकने की आशा सांत्वना देती। मेरे चले आने से बेचारी का रो-रो कर क्या हाल हुआ होगा?···हिन्दू औरत—जिसके जीवन में एक ही मर्द होता है! उसे पुत्र और उसकी मां से केवल स्नेह-सहारे की आवश्यकता थी। उनसे कुछ पाने की अपेक्षा उन्हें अपनी कमाई सौंप कर सन्तोष पाना चाहता था।

हावड़ा में अपने नगर का टिकट खरीद कर उसने अपने अनिश्चय और

दुविधा को समाप्त कर डाला।

वह अपने नगर तक तीस घण्टे की यात्रा में तीस-इकत्तीस वर्षों में हो गये परिवर्तनों को भांपने का यत्न करता आ रहा था। अपने नगर का स्टेशन अधिक बदला हुआ नहीं लगा परन्तु स्टेशन से बाहर अधिक परिवर्तन दिखायी दिया। टमटमों और टांगों के स्थान पर बरमा के शहरों की तरह साइकिल-रिक्शा चलने लगे थे। उसने रिक्शा वाले को अपना गन्तव्य बाज़ार-मुहल्ला बता दिया।

"जानता हूं," रिक्शेवाले ने हामी भरी, "चोर गोपाल जी का मन्दिर न!"

गोपाल जी का मन्दिर उसके मुहल्ले में ज़रूर था। उसके पिता ही तो उस मन्दिर के पुजारी थे परन्तु चोर गोपाल जी का मन्दिर उसने नहीं सुना था। इस नाम से उसे विस्मय हुआ, बल्कि 'चोर' शब्द से मन की गहराई में आशंका सी कुलबुला गयी—किस चोरी की ओर संकेत है! उसने चोर गोपाल जी के नाम की उपेक्षा कर फिर अपने बाज़ार और मुहल्ले का नाम दोहरा दिया।

"हां-हां, ठीक है।" रिक्शा वाले ने आश्वासन देकर रिक्शा चालू कर दिया। सपाट सड़क पर रिक्शा की गति ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही थी, उसके हृदय की धुक-धुक भी बढ़ रही थी···क्या होगा? कोई पहचानेगा या नहीं? पहचानने पर?···उसके पुराने परिचित?

रिक्शा उसके पुराने परिचित बाज़ार में गोपाल जी के मन्दिर की गली के सामने आकर रुक गया। रिक्शा वाला ठांव पर पहुंच कर गद्दी से उतर गया। वह दायीं ओर गली में मन्दिर और नुक्कड़ के मकान को विस्मय और आतंक से देखता रह गया। स्थिति और स्थान निश्चय ही वही थे परन्तु आकार और प्रकार चमत्कार से बदल कर विराट हो गये थे। मन्दिर यथा-स्थान ही था परन्तु मन्दिर के चारों ओर खाली स्थान में संगमरमर का काला-सफ़ेद शतरंजी चौतरा बन गया था। चौतरे के चारों ओर सीने तक ऊंचा जालीदार जंगला लग गया था। इकत्तीस वर्ष पूर्व का छोटा-साधारण सा मंदिर अब परिष्कृत लग रहा था। मन्दिर के ऊपर अनेक कलशों का चमचमाता

सुनहरा शिखर लग गया था। मन्दिर के चौतरे पर स्त्री-पुरुष भक्तों और बच्चों की भीड़ का मेला सा लगा था। मन्दिर के चौतरे की सीढ़ियों पर बैठे फूल-बताशे और खोमचे वाले पुकारें लगा रहे थे। गली के नुक्कड़ पर हलवाई की दूकान अब भी थी परन्तु पश्चिमोत्तर प्रान्त से आये भगत किशनचन्द हलवाई की एक कड़ाही और दो परातों वाली छोटी सी दूकान की जगह प्रकाण्ड दोमंज़िला मकान और हलवाई की खूब बड़ी और सजी-धजी दूकान। इमारत पर मोटे अक्षरों में लिखा था—'भगत भवन'।

'उसने' साहस बटोर अपना संक्षिप्त सा बिस्तर और हलका सूटकेस उठा लिया और गली लांघ कर मन्दिर के दाहिने अपने मकान की ओर बढ़ चला। मुहल्ले की अवस्था अधिक नहीं बदली थी परन्तु उसका अपना मकान पक्का बन गया था। मकान की ड्योढ़ी में पीढ़े पर बैठी एक प्रौढ़ा छः-सात मास के बालक को सुलाने का यत्न कर रही थी।

प्रौढ़ा का चेहरा देखते ही उसका मन द्रवित हो गया। स्मृति ने प्रौढ़ा के चेहरे को आयु के इकत्तीस वर्ष न्यून करके देखा। वही नख-शिख, वही आकृति—आयु से फूल कर ढीले हो गये थे।

उसने अपने आप को संयत कर अपने पिता का नाम लेकर पूछ लिया—"···का मकान यही है?"

प्रश्न की आवाज से चौंक कर प्रौढ़ा की नज़र उसकी ओर उठ गयी। पल-भर देखती रही, जैसे प्रत्यक्ष से परे देख रही हो। विस्मय से उसके होंठ खुल गये। उसके चेहरे पर आंखें गड़ाये गहरी श्वास से बोली—"किसे पूछते हो?" आंचल संभाल कर उठने के प्रयत्न में प्रौढ़ा ने शिशु पोते को गोद से गिरते-गिरते संभाला। वह बच्चे को बांह में ले उठ गयी और उसे मार्ग देने के लिये एक ओर हट गयी। वह अपने घर के भीतर चला गया। प्रौढ़ा ने पोते को एक बांह से संभाल आंगन में खड़ी खाट बिछा दी। वह खाट पर बैठ गया। प्रौढ़ा आंगन में रसोई की ओर गयी। बिना बोले बच्चा बहू को थमा दिया और आकर खाट के समीप फर्श पर बैठ गयी। फिर उसके घुटने के समीप खाट की पटिया पर सिर रख रो पड़ी। उसके भी आंसू बह आये।

रसोई से एक युवती ने झांका। वह प्रौढ़ा से लिये बच्चे को बांहों में संभाले थी। सास को नवागन्तुक के घुटने के समीप सिर टिकाये रोते देखा। नवागन्तुक की आंखों में भी आंसू थे। बहू घूंघट खींच कर पीछे हट गयी।

उसने उमड़ते आंसुओं का घूंट भर कर फफकती हुई प्रौढ़ा पत्नी के सिर पर आश्वासन के लिये हाथ रख दिया। दूसरे हाथ से रूमाल निकाल कर आंसू पोंछे और पुत्र का नाम लेकर पूछा—"···कहां है ?"

"मन्दिर में है। अभी आता होगा।"

पुत्र के मन्दिर से लौटने और बहू के घर से निकलने पर पड़ोसियों को पता लगा। बच्चों के स्कूल से आ जाने पर मुहल्ले भर में समाचार फैल गया। इकत्तीस वर्ष बाद लौटे पड़ोसी को देखने का कौतूहल सभी को था। पड़ोसिनें दौड़-दौड़ कर आयीं और उसकी पत्नी और बहू को बधाई देने लगीं। उसकी आयु के पड़ोसी समाचार सुनकर आये और गले लग कर भेंटे। सभी प्रसन्न थे।

"···तुम तो ऐसे गये कि भूल ही गये। भगवान की ही कृपा है जो लौट आये। अपना घर तो अपना ही होता है।"

उसके पुराने हमजोली मुंशी जी के उत्साह का अन्त नहीं था। उसके कन्धे पर बार-बार थपकी देकर प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे—"तुम गये, तो क्या था और अब भगवान का चमत्कार देखा ! हमने तो अपनी आंखों से बनते-बदलते देखा। यह सब तुम्हारे पिता पंडित जी की भक्ति का चमत्कार समझो कि मन्दिर जागृत हो गया, भगवान प्रकट हो गये। भाई, वह बड़े पुण्यात्मा थे !"

दूसरे पड़ोसियों ने भी मुंशी जी का समर्थन किया—"अरे पंडित जी पुण्यात्मा तो थे ही। गये भी तो कैसे ! आरती से लौट कर सोये तो फिर जागे ही नहीं ! मुख से आह भी न निकली।"

संध्या तक वह पड़ोसियों से घिरा, पोता-पोती को गोद में लेकर उनके सिर पर हाथ फेरता रहा।

"यह सब चमत्कार हो कैसे गया ? मन्दिर कैसे जागृत हो गया ?" उत्सुकता का दमन सम्भव नहीं था। उसने कई बार पुत्र से पूछा।

"सब उन्हीं की माया है !···सब उन्हीं लीलाधर की लीला है ! भगवान ने प्रकट होकर अपनी बाल लीला दिखलायी···माखनचोरी करते थे, भक्तों के मन हरते थे, गोपियों के चीर हरते थे। जिस पर कृपालु हो जायें, उसकी चोरी कर भवसागर से तार दें ! गोपाल जी प्रसन्न हुये तो अपना चोर रूप दिखला दिया।"

युवक पुजारी पुत्र ने संकोचवश कई बार पिता की उत्सुकता को टालना चाहा।

उस से भी इकत्तीस वर्ष पूर्व विकट आवश्यकता के कारण चोरी का अपराध हो गया था। मालिक की रोकड़ में से दस रुपये निकाले। मालिक ने अपने मन्दिर के पुजारी का लिहाज़ कर उसे पुलिस के हाथ न सौंपा, नौकरी से हटा दिया था। वह उस अपराध और कलंक के कारण इकत्तीस वर्ष तक अज्ञात-वास सह कर लौटा था और उसकी अनुपस्थिति में भगवान की चोर-लीला से यह चमत्कार हो गया था। उसकी उत्सुकता पागलपन की हद तक पहुंच गयी। पुत्र ने पिता के अनुरोध और उत्सुकता को बहुत टाला परन्तु उसे बताना ही पड़ा।

युवा पुत्र ने रात के एकान्त में स्वर दबा कर पिता की उत्सुकता का समाधान किया—"जब आप चले गये थे, तब गली के नुक्कड़ पर भगत किशनचन्द हलवाई था न! तब मन्दिर में बहुत कम लोग आते पर नुक्कड़वाला किशनचन्द हलवाई दोनों टैम नेम से मन्दिर में आता था। जानते थे न, बड़ा भगत आदमी था। नुक्कड़ की दूकान चलायी थी तो उसने मूर्ति के लिये शृंगार बनवा दिया था—भगवान की मूर्ति के लिये कड़े और राधा जी की मूर्ति के लिये हार—रात में वह दूकान बढ़ाने से पहले विसर्जन की आरती के लिये भी आता था। वह नेम से विसर्जन की आरती के लिये आने लगा तो उसका नेम-धर्म देख कर मुहल्ले के दो-चार बड़े-बूढ़े भी आ जाते। किशनचन्द अपनी दूकान से चरणामृत के लिये दूध और प्रसाद के लिये मिठाई का चूरा ले आता था। बच्चे प्रसाद की आशा में मन्दिर में ही ऊंघ जाते थे। हम भी वहीं बैठे रह जाते थे, तो आप बिगड़ते थे न! आप चले गये, तब हमारी उमर ही क्या थी—बस यही पांच-छः बरस! आप चले गये तो दादा कुछ नहीं बोलते थे। हम प्रसाद के लिये बैठे-बैठे सो जाते और दादा सोते में ही हमारे मुंह में प्रसाद भर देते।

"भगवान की लीला! बरसात के दिन थे, लम्बी झड़ी लगी थी। दादा विसर्जन की आरती के लिये चले, तो हम भी प्रसाद के लालच में साथ हो लिये। दादा किशनचन्द की बाट में बैठ गये। बहुत देर हो गयी। किशनचन्द नहीं आया तो दादा ऊंघने लगे। रिमझिम होती जा रही थी। हम बरसते में दोपहर भर सोये थे, सो हमें नींद नहीं आ रही थी। सोच रहे थे, प्रसाद कब मिलेगा।

"तब यहां मुहल्ले में एक रेलवाई का बाबू रहता था। उसका लड़का हम से पांच-छः बरस बड़ा था न! वह घर से पैसे चुरा कर किशनचन्द की दूकान

से हमें दिखा-दिखाकर मिठाई खाता था। हमें सिखाता था—मन्दिर से मूर्तियों का शृंगार उतार लाओ तो खूब मिठाई खायें।

"नींद नहीं आ रही थी, तो वही हमें याद आ रहा था। सोचा, दादा सोये हैं, मूर्ति पर चढ़ावे में कोई पैसा होता तो उठा लेते और किशनचन्द के यहां से कलाकन्द ले लेते। उस समय सिंहासन पर कुछ नहीं था।

"कोई देख नहीं रहा था। हमने चुपके से भगवान की मूर्ति का कंगन उतार दिया। दादा सोते रहे। हम मन्दिर से निकले, तब भी रिमझिम बरस रहा था। गली के नुक्कड़ पर गये। दूकान में रोशनी थी। किशनचन्द कलाकन्द, पेड़े और दूसरी मिठाइयों के थालों के पीछे पालथी में बैठा गोद में तराजू रखे ऊंघ रहा था।

"हम ने कहा, "कलाकन्द दे।" और भगवान की मूर्ति से उतरा कंगन तराजू में फेंक दिया।"

"आहट से किशनचन्द की पलकें खुलीं। हाथ दाम उठाने के लिये तराजू पर गया। हाथ में आया कंगन।"

"यह क्या ?" किशनचन्द ने कंगन हाथ में लेकर नींद में दबी पलकें उघाड़ विस्मय से कहा।

"हम डर तो गये थे पर दोनों हाथ बढ़ा कर कलाकन्द की मुट्ठी भर ली और भाग कर घर में जा दुबके।

"कुछ देर बाद किशनचन्द ने आकर दादा को पुकारा। मन्दिर में हल्ला मच गया। किशनचन्द और दादा दूसरे लोगों को पुकारने लगे। हम डरे कि भगवान की मूर्ति का कंगन चुराने के लिये बहुत मार पड़ेगी।"

उसके युवा पुजारी पुत्र ने बहुत उत्साह से कहा—"परन्तु यह तो भगवान की लीला थी। किशनचन्द और दादा पुकार-पुकार कर, उल्लास से विभोर होकर, नाच-नाच कर कंगन दिखा कर लोगों को बताने लगे।

"यह देखा कंगन ? कंगन कैसे दूकान पर पहुंच गया ! पुजारी जी यहां जप-भजन करते रहे। इनके देखते-देखते कंगन यहां से चला गया। बरसात के कारण लोगों ने विसर्जन की आरती में विलम्ब किया तो भगवान ने लीला दिखा दी। बाल-रूप धारण करके आये थे। दिव्य रूप सलोने घनश्याम, काकुल-कुण्डल छिटके हुए, बड़ी-बड़ी रस भारी आंखें ! हमारे सामने हंस कर कलाई से कंगन उतारा और फेंक दिया—ला प्रसाद दे ! गोरस के प्रेमी तो

हैं ही, हंस कर दोनों हाथों से कलाकंद मुंह में भर लिया और अन्तर्ध्यान हो गये ! हम चौकस जाप रहे थे। चाहा कि पांव पकड़ लें पर वह तो अन्तर्ध्यान ! भक्ति-विभोर, गद्‌गद् होकर किशनचन्द और दूसरे भक्तों ने खड़तालें, मंजीरे ले लिये और नाच-नाच कर कीर्तन करने लगे। मन्दिर में भीड़ लग गई। सुबह तक कीर्तन होता रहा।

"सुबह शहर भर में बात फैल गई, रात गोपाल जी के मन्दिर में भगवान प्रकट हो गये। मन्दिर में ठेलम-ठेल भीड़ ! मन्दिर में कई दिन अखण्ड कीर्तन होता रहा। मेला लगा रहा।

"हमारी किसी से कुछ कहने की हिम्मत ही नही हुई और इसमें कहने की बात ही क्या थी ! किशनचन्द को तो दर्शन ही हो गये थे। वह खड़तालें लेकर दिन-रात मन्दिर में ही कीर्तन करने लगा। दूकान की परवाह ही नहीं रही। दूकान लड़के संभालने लगे। मन्दिर में जो आता, प्रसाद उसकी दूकान से ही लेता। मन्दिर का नाम 'चोर गोपाल जी का मन्दिर' पड़ गया। इतना चढ़ावा चढ़ने लगा कि संभाले नहीं संभलता था। लोगों को ईर्ष्या तो होनी ही थी। लोग झगड़े करने लगे। मन्दिर का ट्रस्ट बनवा दिया। अब हमें तो दसवां ही मिलता है। जिसे भगवान ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये, उसे किस बात की कमी रहती ! किशनचन्द जब पूरा हुआ, तब तक अपनी दूकान और साथ के मकान खरीद कर दुमंजिला मकान बनवा चुका था। उसकी अर्थी के साथ हजारों लोग गये।"

× × ×

वह इकत्तीस वर्ष के अज्ञातवास के बाद अपने घर लौटा था। घर को आशा से अधिक सम्पन्न और सुखद पाया, परन्तु उसे नींद नहीं आ रही थी। पुत्र से भगवान के प्रत्यक्ष होने के चमत्कार द्वारा मन्दिर की कला जागृत हो जाने का रहस्य सुन कर, उसका मस्तिष्क घूमता जा रहा था। भगवान की लीला ! वह एक चोरी के अपराध में इकत्तीस वर्ष अज्ञातवास भोगता रहा और उसके पुत्र की चोरी के परिणाम में यह चमत्कार ! भगवान की लीला का पार कौन पा सकता है ? रात के चौथे पहर आंख लग सकी। नींद खुली, तो दिन चढ़ चुका था।

पिछली रात पोते-पोतियों को लाड़-प्यार करके उसका मन नहीं भरा था। ग्यारह वर्ष की पोती और छः वर्ष का पोता उसकी गोद में ही सिर रख कर सो गये थे। बहू सोते हुये बच्चों को उठा कर ले गई थी। सुबह उठते ही उसने पोती-पोते को पुकार लिया।

उसकी पुकार सुन कर पोती आई और रुआँसे स्वर में खनक कर बोली—"दादा, पड़ोसी···का लल्लू हमें गाली दे रहा है कि तुम्हारे दादा चोरी करके भागे थे।"

पोती की बात सुन कर उसका शरीर पसीना-पसीना हो गया और सिर झुक गया। हृदय से एक गहरी सांस निकल गई। इकत्तीस वर्ष बाद भी उस की चोरी का कलंक नहीं धुल सका !···वह अपने घर और मुहल्ले में नहीं रह सकेगा !

उसकी चोरी तो चोरी थी, कोई भगवान की लीला या चमत्कार तो नहीं !

अश्लील !

मूर्त्तिकार मारिश कुछ मास से शूरसेन की जनपद-कल्याणी देवी रत्नप्रभा का अतिथि था। भाद्रपद मास की निरन्तर झड़ियों में और उस मास के निरभ्र आकाश की असह्य घाम में भी वह मौलश्री वृक्ष के नीचे पड़े विशाल शिला-खण्ड पर छेनी और हथौड़ा चलाता रहता।

देवी रत्नप्रभा और उनकी सखियां प्रायः नित्य ही मौलश्री वृक्ष के नीचे आतीं और कलाकार के श्रम का प्रयोजन और अभिप्राय जान सकने के लिये कुछ क्षण शिलाखण्ड में शनैः-शनैः प्रकट होती आकृति को देखती रहतीं।

एक दिन आकाश मेघाच्छन्न था, परन्तु वर्षा नहीं हो रही थी। सुखद और शीतल पवन बह रहा था। रत्नप्रभा मध्याह्नोत्तर में अपने प्रासाद के उद्यान में भ्रमण कर रही थी। उसने मारिश को पुष्करिणी के समीप, कदम्ब वृक्ष के तने से पीठ लगाये निष्क्रिय बैठे देखा तो पूछ लिया—"आर्य, आज कला-कार्य से विरक्त क्यों हैं ?"

"देवी, वह भाव और अभिप्राय पूर्ण हो गया।"

मारिश के उत्तर से रत्नप्रभा विस्मित रह गयी। बीच में केवल एक ही दिन वह उस शिलाखण्ड के समीप न जा सकी थी। उसने सोचा, इतने अल्प समय में वह विशाल शिलाखण्ड किस चमत्कार से एक पूर्ण मूर्ति में परिणत हो गया होगा ?

"क्या आर्य कला का वह उत्कृष्ट रत्न स्वयं चलकर दिखायेंगे ?" उसने मारिश से अनुरोध किया।

मारिश के अनुमति प्रकट करने पर रत्नप्रभा ने दासी दग्धा को आदेश दिया—"दग्धा, हमारी सखी अंशुमाला को और मुक्तावली को भी आयुष्मान्

की कलाकृति का दर्शन-सुख पाने के लिए निमन्त्रित करो ।"

रत्नप्रभा, अंशुमाला और मुक्तावली मौलश्री के नीचे पड़े शिलाखण्ड को ध्यान से देख रही थीं । शिलाखण्ड का ऊपर और नीचे का भाग अछूता था । केवल शिला के मध्य अधो भाग में, जैसे गवाक्ष खोल कर किसी पूर्ण युवा नारी का एक उन्नत स्तन, त्रिवली पर झुकाव और नाभि से फैलता उभार दिखाया गया था । रत्नप्रभा अपनी सखियों सहित अनेक क्षण तक चिबुक पर तर्जनी रखे ध्यान से उस कृति का मनन करती रही । मारिश भी मौन खड़ा रहा ।

"आर्य," रत्नप्रभा ने जिज्ञासा की, "क्या यह कृति पूर्ण है ?"

"देवी, मेरे अभिप्राय से यह पूर्ण है ।" मारिश ने उत्तर दिया ।

रत्नप्रभा ने मुसकान से आग्रह किया—"आर्य, मेरे मत से यह नारी का अंगमात्र है; पूर्ण नारी नहीं ।"

मारिश ने अपने रूखे केशों को उंगली से खुजा कर उत्तर दिया—"देवी का कथन उचित है, परन्तु नारी के इसी अंग में उसकी प्रकृति समाहित है । यही अंग नारी के अस्तित्व की सार्थकता के लिए पुरुष का आह्वान करता है और फिर उस फलीभूत सार्थकता का पोषण करता है । देवी, यह नारी है ।"

रत्नप्रभा ने गम्भीर होकर मारिश की ओर आदर से देखा—"आर्य, मैं इस विलक्षण कृति के भाव को अब पा सकी ।" उसका स्वर पुलक उठा, "यह पाषाण के चिर-स्थायी स्वर में नारी के जीवन की व्याख्या है ।" रत्नप्रभा के स्वर में स्तुति थी ।

देवी के आस्थान की सहायक कलाकार सखियों ने ग्रीवा के संकेत से अनुमोदन कर सन्तोष के दीर्घ निःश्वासों से श्लाघा प्रकट की ।

दासी दग्धा संभ्रम से स्वामिनी और उनकी सखियों के पीछे खड़ी थी । कलाकार और स्वामिनी का वार्त्तालाप सुन कर उसके मुख पर लाज की आंच अनुभव हो गयी । उसने होठों पर उंगली रख कर मुख फेर लिया—"हाय, कितना अश्लील !"

सत्य का द्वन्द्व

गत वर्ष हमारे नगर की यूनीवर्सिटी के एक रिटायर्ड अध्यापक का देहान्त हो गया था। नगर के बुद्धिजीवियों में उनके उदार विचारों और अध्ययनशील प्रकृति के कारण उनके प्रति बहुत आदर था। अध्यापक महोदय का एकमात्र चाव और समय-यापन का साधन था अध्ययन। इस वर्ष उनके व्यवसाय प्रवृत्ति युवा पुत्र ने अपनी बैठक आधुनिक ढंग से सजा सकने के लिए पिता की बहुत-सी पुस्तकें, पत्र-पत्रिकायें अध्ययन प्रेमी परिचितों में बांट दी हैं। मेरे भाग में आयी पुस्तकों और पत्रिकाओं में एक रजिस्टर आ गया है जो वास्तव में अध्यापक जी की विशेष डायरी थी। उस डायरी के कुछ पृष्ठ सर्वसाधारण के लिए रुचिकर हो सकते हैं। इन पृष्ठों पर शीर्षक और लेखन इस प्रकार है:—

सत्य का द्वंद्व ?

सत्य सम्बन्धी धारणाओं में कैसा द्वंद्व सम्भव है ? कल क्या हुआ :—

धूल भरी लू ज़ोर से चल रही थी। रिटायर हो जाने पर मितव्ययता के विचार से मई-जून में पहाड़ जाना स्थगित कर दिया है। लू चलने पर बैठक के किवाड़ों में चिटखनी लगा लेता हूं। सड़क की ओर की खिड़की पर खस की टट्टी बंधवा ली है। भयंकर लू के समय किसी को सड़क पर जाकर खस की टट्टी पर पानी डालने के लिए कैसे कहा जाये ! पानी भरी बाल्टी और झरनेदार पिचकारी बैठक में रहती है। लू के समय, कुछ-कुछ देर बाद टट्टी पर पिचकारियां भर कर छोड़ लेने से लू शीतल वायु बन कमरे में आती रहती है। गरमी अधिक होने के कारण दोपहर में घंटे भर को झपकी आ गयी थी। तीसरे पहर एक पुरानी पुस्तक पढ़ रहा था। संयोग की बात है कि पुस्तक में प्रसंग तथ्य, भाव और प्रयोजन की दृष्टि से सत्य की मीमांसा का था।

किवाड़ों पर दस्तक सुनायी दी। सोचा, ऐसे समय कौन आयेगा। अस्तु—'खोलते हैं' कह कर पुस्तक एक ओर रख दी और उठकर चिटखनी खोली।

"चाचा जी मैं हूं, सत्यब्रत।"

"आओ-आओ ! अरे, ऐसी लू में ! खैरियत तो है ?"

सत्यब्रत की आंखें लू और धूल से लाल और चेहरा गरमी से तपा हुआ ही नहीं, क्षुब्ध भी लगा। उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत कर भीतर से दरवाज़ा खोल पुकारा—"बिट्टन, भैया के लिए एक गिलास पानी दे जाओ सुराही से।"

सत्यब्रत कुर्सी पर बैठकर पतलून की जेब से रूमाल निकाल चेहरे और गर्दन का पसीना पोंछ रहा था। उससे पूछा—"इतनी लू में आये हो, खैरियत तो है न ?"

"चाचा जी असमय आया हूं। आप के विश्राम में विघ्न डाला है।" सत्यब्रत ने संकोच से कहा—"क्षमा चाहता हूं परन्तु कुछ ऐसी ही स्थिति हो गयी है कि शायद आप ही उसे सम्भाल सकेंगे।"

"अरे नहीं, मेरे विश्राम में कोई विघ्न नहीं पड़ा। कहो, ऐसा क्या मामला हो गया ?" नौजवान को आश्वासन दिया।

बिट्टन जल का गिलास ले आयी। सत्यब्रत ने उस गरमी में भी कह दिया—"अभी प्यास नहीं है।"

उससे अनुरोध किया—"जल पी लो, फिर तुम्हारी बात सुनेंगे।"

सत्यब्रत ने जल पीकर बताया—"चाचा जी, हम लोग विकट संकट में फंस गये हैं। दद्दा जी कल से सप्ताह भर का अनशन और मौन आरम्भ कर रहे हैं। उनके आहार न करने पर अम्मा कैसे खा सकती हैं। अम्मा पहले ही दो दिन से निराहार हैं। उनका स्वास्थ्य बहुत गिर चुका है। हृदय रोग की मरीज़ हैं। ऐसी स्थिति में भाभी भी निराहार रहेंगी।" उसका गला भावोद्रेक से घरघरा गया।

सत्यब्रत आरम्भ से ही बहुत अच्छे विद्यार्थियों में रहा है। चैतन्य, परिश्रमी और विचारशील नवयुवक है। सत्यब्रत के प्रति आत्मीयता का एक कारण उसके पिता के प्रति आदर भी था। उनका आदर सम्पूर्ण नगर और प्रदेश करता है। लोग-बाग उनका उल्लेख संत जी कह कर करते हैं।

तीन वर्ष पूर्व संत जी नगर के अच्छे वकीलों में गिने जाते थे। उनकी वकालत और उनके सार्वजनिक सेवा के और राजनीतिक कार्यों का आरम्भ एक साथ ही हुआ था। तभी से उनके प्रति दूसरे लोगों की तरह मेरे मन में

भी आदर का भाव जमने लगा था। आयु में वे मुझ से दो तीन वर्ष कम ही हैं परन्तु मैं तब भी उन्हें नाम से नहीं, वकील साहब कह कर ही सम्बोधन करता रहा हूं। गाम्भीर्य और गुरुता उनके व्यक्तित्व में आरम्भ से ही है।

वकील साहब सन् १९३० में देश की मुक्ति के आन्दोलन में सत्याग्रह कर जेल गये थे। जेल से लौटने पर उन्होंने वकालत त्याग दी और अपना सम्पूर्ण समय जन-सेवा तथा राजनीतिक कार्य में देने लगे। उनके राजनीतिक कार्य में भी त्याग की भावना थी। देश की स्वतंत्रता का लक्ष्य वे भौतिक की अपेक्षा आध्यात्मिक, सत्य-अहिंसा और त्याग की साधना द्वारा देश की जनता को निर्भय, मुक्त और आत्मतुष्ट मानव बनाना समझते थे। उन्हीं दिनों वकील साहब के सबसे छोटे पुत्र का जन्म हुआ था और उन्होंने उसका नाम सत्यव्रत रख दिया था। सत्य ही उनका एकमात्र इष्ट और जीवन का लक्ष्य था। नगर की जनता सत्यव्रत के पिता को महात्मा गांधी का प्रतिनिधि मानकर 'संत जी' पुकारने लगी थी। इतने वर्ष तक वकील साहब पुकारते रहने के अभ्यास के पश्चात् उन्हें सहसा संत जी पुकारते मुझे कुछ झिझक हुई परन्तु अब वकील साहब कहते भी भला नहीं लगता था। मेरे संत जी सम्बोधन पर जब उन्हें कुछ आपत्ति न हुई तो मन में कुछ विचित्र-सा लगा था।

आरम्भ में सत्यव्रत की ओर उसके पिता के कारण ध्यान गया था परन्तु ज्यों-ज्यों उसे जानने का अवसर मिला उसके स्वभाव और दृष्टिकोण के कारण उसके प्रति स्नेह बढ़ता गया। नवयुवक भी मेरी भावना समझ गया। फिलासफी में एम० ए० पास करने के तुरन्त पश्चात् सत्यव्रत को, उसके पिता के प्रभाव के कारण सुविधा से यूनीवर्सिटी में नौकरी मिल सकती थी परन्तु उसने नौकरी की चिन्ता न कर पश्चिमीय और पूर्वीय दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए रिसर्च की इच्छा प्रकट की। उसका विचार जान कर उसे उत्साहित किया। एक अध्यापक के लिए ऐसा स्वाभाविक भी है।

सत्यव्रत ने एम० ए० फर्स्ट डिवीज़न में पास किया है। उसके दोनों बड़े भाइयों की अध्ययन सम्बंधी क्षमता और रुचि परिमित थी। बड़ा भाई बी० काम० ही कर सका। मंजले ने एम० ए० पास किया परन्तु तीसरे डिवीज़न में। वे दोनों बरसिरे रोज़गार हैं। जीविका पाने के लिये उन्हें विशेष संघर्ष नहीं करना पड़ा। देश के समर्थ उद्योगपतियों ने संत जी के मकान त्याग और सार्वजनिक सम्मान की सराहना में उन के दोनों पुत्रों को अपने व्यवसायों में

अच्छी नौकरियां दे दी हैं। संत जी की इच्छा थी कि उन का एक पुत्र तो विशिष्ट स्थिति प्राप्त कर सके। वे चाहते थे सत्यब्रत आई० ए० एस० की परीक्षा दे।

संत जी सत्यब्रत की मेरे प्रति भावना से परिचित हैं। नौजवान को समझाने का काम मुझे सौंपना चाहते थे। संत जी का विचार था कि समाज और देश को, वाग्जाल की उधेड़बुन में फंसे रहने वाले आधुनिक दार्शनिकों की आवश्यकता नहीं। ऐसे लोग संसार का क्या भला कर सकते हैं। पी-एच० डी० करके लड़का यूनीवर्सिटी में तीन सौ रुपल्ली से अधिक क्या ले लेगा ? आई० ए० एस० शासक का काम देश और समाज का भविष्य और भाग्य बनाना है। ऐसा आदमी योग्य हो तो चीफ सेक्रेटरी और उस से आगे भी पहुंच सकता है। सत्य और न्याय में आस्था रखने वाला त्यागी शासक समाज का बहुत बड़ा कल्याण कर सकता है। शासन में रामराज्य और रावण राज्य की प्रवृत्ति शासकों के विचार और स्वभाव पर ही निर्भर करती है। विद्या का प्रयोजन समाज का भला कर सकना ही है। पूर्वी और पश्चिमी विचारधाराओं की उलझनों में रुचि उन्हें किशोर अवस्था का मानसिक प्रसाद ही जान पड़ता था।

सम्पूर्ण समाज के सुधार के प्रयोजन से मार्गदर्शन का उत्तरायित्व स्वीकार कर लेने के पश्चात् संत जी को दूसरे लोगों के दृष्टिकोण समझ सकने का अवसर नहीं रह गया था। सत्यब्रत के विचार के औचित्य के सम्बन्ध में कुछ कहना, उन्हें खिन्न करना ही होता इसलिये लड़के को समझाने के उन के सुझाव से इनकार नहीं कर सका। सत्यब्रत इस विषय में मेरे विचार से पहले ही परिचित था। इस प्रसंग से मेरी ओर नौजवान का झुकाव और भी बढ़ गया। मेरे यहां वह प्रायः ही आने लगा। मैं भी आर्थिक क्षेत्र में होनहार और व्यवसाय-कुशल अपने पुत्र की अपेक्षा, सत्यब्रत से बातचीत में अधिक संतोष पाता हूं।

× × ×

"ऐसा क्या झंझट खड़ा हो गया ?" सत्यब्रत की व्याकुलता के प्रति सहानुभूति से प्रश्न किया।

"मेरा ही अपराध समझ लीजिये।" सत्यब्रत ने नेत्र झुका कर ओंठ काट लिये और फिर नज़र उठाकर बोला, "आप जानते हैं न, दादा जी सोमवार

को निराहार और मौन रहते हैं। परसों सोमवार दोपहर में लगभग साढ़े बारह बजे, दो दिहाती कांग्रेसी मकान पर आये। वे चौदह कोस मजहवा गांव से आये थे। बहुत परेशान और व्याकुल थे। पुलिस ने उनके घर की एक बहू को शत्रु पक्ष की रिपोर्ट पर गिरफ्तार कर लिया। वे दद्दा जी से सलाह-सहायता के लिये मिलना चाहते थे।

"आप जानते हैं, दद्दा जी मौन व्रत के समय गीता अध्ययन अथवा चर्खा कातने के अतिरिक्त दूसरा काम नहीं करते। आवश्यक काम होने पर खड़िया से स्लेट पर लिख देते हैं परन्तु इतनी दूर से, ऐसे संकट में आये लोगों की व्याकुलता देख कर मुझे उन्हें यह कह देने का साहस न हुआ कि दद्दा जी सोमवार के व्रत के कारण उनसे नहीं मिलेंगे। यह भी खयाल आया कि शायद इनके संकट का विचार कर दद्दा जी इनसे बात कर लें, व्रत दूसरे दिन रख लेंगे। उन्हें उत्तर दिया—"दद्दा जी सुबह जरूरी काम से बाहर गये थे। आप ज़रा इन्तज़ार करें, देख लूं लौट आये हैं या नहीं ?"

"दद्दा जी बैठक में ही थे। गली वाली खिड़की पर केवल जवासे की टट्टी की आड़ थी। भीतर जा कर दद्दा जी को आगन्तुकों के आने और उनकी व्याकुलता का कारण बताना चाहा। दद्दा जी ने चर्खा रोक मुझे मौन का संकेत कर स्लेट पर लिख दिया—"हमने सुन लिया है पर आज व्रत है।"

"सोचा, वे लोग जानेंगे कि दद्दा जी भीतर मौन साधे बैठे हैं। उनके इतनी दूर से आने, उनके संकट और व्याकुलता की बात जान कर भी उनसे नहीं मिल रहे तो उन्हें बहुत दुख होगा। उनसे कह दिया—दद्दा अभी लौटे नहीं। वे 'हंडिया' गये हैं, सुबह ही लौटेंगे। तब आप की जो सहायता सम्भव होगी, करेंगे। मुझे खयाल न रहा दद्दा जी का ध्यान उधर ही होगा, वे टट्टी की आड़ से सुन रहे होंगे।

"दद्दा जी ने कल प्रातः सोमवार का निराहार व्रत समाप्त करने से पूर्व घर के सब लोगों को बैठक में बुलाकर मेरे असत्य भाषण पर खेद प्रकट किया। बोले—"स्वयं मेरे घर और परिवार में असत्य भाषण और असत्य का व्यवहार है तो मैं दूसरों से सत्यनिष्ठा की आशा कैसे कर सकता हूं।" उन्होंने मेरे असत्य भाषण के प्रायश्चित और मेरे मन की शुद्धि के लिये, सोमवार प्रातः से आरम्भ अनशन को बृहस्पतिवार प्रातः तक रखने का निश्चय प्रकट कर दिया।

"स्पष्ट था, जब तक दद्दा अनशन करेंगे, अम्मा भी निराहार रहेंगी।

अम्मा के न खाने पर भाभी भी न खा सकेंगी। इस संकट का कारण मेरी समझ और व्यवहार ही था। मैंने अपने असत्य भाषण का आशय बता कर दद्दा जी से क्षमा चाही। स्वयं प्रायश्चित के लिये अड़तालीस घटे निराहार रह कर मानसिक शुद्धि के लिये गीता पाठ करने का वचन दिया। मेरे इस आश्वासन से दद्दा जी ने स्वयं अनशन का विचार छोड़ दिया।

"मैं गीता लेकर ऊपर के कमरे में चला गया। संध्या तक दो बार अठारह अध्याय पढ़ डाले। कुछ समय तंद्रा में पड़ा रहा। दद्दा जी ने दो बार मेरे सम्बन्ध में पूछा तो उन्हें बता दिया गया कि ऊपर कमरे में गीता पाठ कर रहा था। संध्या दद्दा जी कहीं बाहर गये थे तो अम्मा ऊपर आयीं। उनकी आंखों में आंसू थे। दूध का गिलास और कटोरी में मठरी लिये थीं। मैंने खाने से इनकार किया तो रो कर आग्रह करने लगीं—थोड़ा खा लो नहीं तो पित्त बढ़ने से बीमार हो जाओगे। तब भी मुझे ही झेलना पड़ेगा। तुमने दद्दा का मन रख लिया, ठीक किया। उनसे कोई नहीं कहेगा।

"अम्मा ने अपने सिर की कसम धरा कर कहा—मैं नहीं खाऊंगा तो वे जल भी नहीं पियेंगीं। दद्दा जी की बात है तो कुछ हक उनका भी है। भाभी भी ऊपर आ गयीं। उन्होंने बताया—अम्मा ने सचमुच सुबह से जल का घूंट भी नहीं पिया था। भाभी निराहार थीं।

खाने को बिलकुल मन नहीं था परन्तु यह सोचकर कि अम्मा कल दद्दा जी के अनशन के कारण उपासी रहीं, आज मेरे कारण निराहार हैं; उनके साथ भाभी भी। विवश हो गया। आज प्रातः भी अम्मा दूध और हलुआ ले आयीं। मेरे अनिच्छा प्रकट करने पर फिर उन्होंने अपने सिर की कसम दी, क्या करता ?

"अम्मा जी आंगन में पांव रखने को ही थीं कि दद्दा जी की पुकार सुनाई दी। वे आंगन में आकर अम्मा को पुकार रहे थे। नौकर ने कह दिया—बचवा देखने ऊपरी गयी हैं।

"अम्मा हाथ में कटोरी-गिलास होने के कारण भय से लौट जीना चढ़ने लगीं। दद्दा जी जीने के दरवाज़े पर आ गये। अम्मा के हाथ में कटोरी-गिलास देख उन्होंने कठोर स्वर में पूछ लिया—यह क्या है ?

"दद्दा जी सत्य-अहिंसा का व्रत लिये हैं परन्तु अम्मा उनके आतंक से सदा ही सकुची रहती हैं। उनके सामने कभी मन की बात बोल ही नहीं सकतीं।

अम्मा भय से लड़खड़ा कर जीने में बैठ गयीं। गनीमत हुई कि लुढ़क नहीं पड़ीं परन्तु कंपकपी से गिलास-कटोरी हाथ से छूट गये और झनझनाते हुए दद्दा जी के पांव के समीप पहुंच गये। दद्दा जी ने गिलास कटोरी को ध्यान से देखा और लौटकर बैठक में चले गये। मैं ऊपर के कमरे में बैठे सब कुछ जान और समझ गया। अपने कारण अम्मा पर आये संकट का अनुमान कर ख्याल आया—ऐसी दीन और अपमानित स्थिति से तो मृत्यु भली पर कर क्या सकता था !

"ग्यारह बजे नौकर ने मुझे बैठक में जाने के लिये बाबू जी का संदेश दिया। अम्मा, भाभी और बुआ दद्दा जी के सन्मुख बैठी थीं। अम्मा अपमान और आतंक के आंसू छिपाने के लिये मुख पर आंचल खींचे थीं। भाभी का चेहरा भी भय से कागज़ की तरह पीला। दद्दा जी हाथों में थमी गीता पर आंखें झुकाये थे। वे दो मिनिट गीता पढ़ते रहे, शायद अध्याय समाप्त कर रहे थे। पुस्तक एक ओर रख कर उन्होंने एक मिनिट के लिए नेत्र मूंद लिये और फिर मुझे सम्बोधन किया—तुम लोग जानते हो, मैं सत्य और अहिंसा को सर्वोपरि मानता हूं। मेरे जीवन का लक्ष्य सत्य और अहिंसा को निबाहना है परन्तु मैं तुम लोगों के हृदय में इस लक्ष्य के प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न नहीं कर सका हूं। यह मेरे चरित्र की दुर्बलता और त्रुटि है। मेरी निर्बलता के कारण ही तुम सबने मिलकर सत्य के पालन में मेरे साथ प्रवंचना की है। मेरी आत्मा अपनी इस दुर्बलता से लज्जित है। मैंने अपनी आत्मा की शुद्धि और शक्ति के लिए तथा तुम लोगों को विश्वास का बल देने के लिये तुम्हारा हृदय परिवर्तन करने से लिये प्रायश्चित करने का निश्चय किया है। विनीत भाव से अपनी त्रुटि को स्वीकार करने में और स्वेच्छा तथा विचारपूर्वक प्रायश्चित और तप से ही आत्मशुद्धि और आत्मिक बल की प्राप्ति हो सकती है। यह प्रायश्चित-व्रत मैं अनशन और मौन द्वारा करूंगा। इस व्रत की अवधि अड़तालीस घंटे नहीं, कल प्रातः बृहस्पतिवार से एक सप्ताह आगामी बुधवार तक होगी। आवश्यकता होने पर मैं केवल जल अथवा गरमी में पित्त शांत रखने के लिये, जल में नींबू या सोडा ले सकूंगा। यदि आप लोग चाहें तो मेरे शरीर पर बादाम रोगन की मालिश की जा सकती है। इन वस्तुओं का उचित प्रबंध कर लेना चाहिये। यह व्रत मैं इस घर में नहीं करुंगा। इस घर के सभी व्यक्तियों ने असत्य और प्रवंचना में भाग लिया है। इस घर का वातावरण असत्य भावना

से दूषित है। इस व्रत के समय सप्ताह भर मैं कम्पनी बाग की बारादरी में रहूंगा।

"चाचा जी, सोचिये!" सत्यव्रत ने क्षोभ से कुछ ऊंचे स्वर में पूछा, "दद्दा जी के ऐसे व्यवहार से हम सब लोगों की क्या स्थिति होगी? वे सार्वजनिक स्थान में अनशन करेंगे तो जनता उनके दर्शन के लिए पहुंचेगी। सब लोग व्रत का कारण जानना चाहेंगे। वे गोपनीयता को अपराध मानते हैं। असत्य बोलेंगे नहीं। अनशन का प्रयोजन गुप्त रहने से सत्यनिष्ठा के उदाहरण का प्रचार कैसे होगा? जनता को उससे क्या शिक्षा मिलेगी परन्तु क्या अम्मा और हम नगर में मुंह दिखाने लायक रहेंगे?

"दद्दा जी हमारी बात कैसे सुन सकते हैं!" सत्यव्रत ने विवशता प्रकट की, "वे तो हम लोगों को असत्य और प्रवंचना की अभिसंधि का भागी समझते हैं। अम्मा, बुआ और भाभी उनके पांव पकड़ कर क्षमा के लिए गिड़गिड़ाने लगीं। उन्होंने कह दिया—यदि हम लोग इस विषय में दुराग्रह करेंगे या अन्य लोगों को हस्तक्षेप करने के लिए कहेंगे तो वे हमारे दुराग्रह के प्रायश्चित के लिए अनशन में निर्जल भी रहेंगे। वे बैठक की बगल के कमरे में चले गये और किवाड़ मूंद लिये।"

सत्यव्रत की आंखों में आंसू आ गये—"चाचा जी आप नहीं जानते, अम्मा का स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। उनका हृदय रोग बहुत बढ़ चुका है। उन्होंने दद्दा जी को भोजन कराये बिना स्वयं कभी अन्न मुख में नहीं डाला। उनके लिए तो अनशन सप्ताह का नहीं, दस दिन का होगा; तिस पर नगर में मुख काला होने की विकट मानसिक यंत्रणा। घर का सम्मान बचाये रखने के संघर्ष में ही तो उनका शरीर मिट्टी हो गया। दद्दा जी का तो सदा वही व्यवहार रहा कि एक नाक रखाने को दूसरा नाक कटाने को फिरे! जब दद्दा जी ने वकालत बिलकुल छोड़ दी थी, दोनों बड़े भाई आठवीं और मैट्रिक में थे। तब अम्मा ने कैसे निबाहा। घर में न दूध, घी, तरकारी के लिये दाम, न हम लोगों के पास घर से बाहर कदम रखने लायक कपड़े। भाई स्कूल-कालेज जाते शरमाते थे। दद्दा जी तो कहते थे, गरीबी से क्या लज्जा! स्वेच्छा से अपनायी गरीबी ही तो सम्मानजनक है। शरीर पर खद्दर की एक धोती काफी है। घी-दूध अनावश्यक है। केवल ज़बान का चटोरपन है। स्वास्थ्य के लिए गेहूं-चना भिगो कर खाओ परन्तु अम्मा घर की इज्ज़त बनाये रखने के लिए अपने मायके से

ला-लाकर, अपना गहना बेचकर पहनाती-ओढ़ाती रहीं । घर में दूध-तरकारी तो बड़े भाई की नौकरी लग जाने के बाद से ही आने लगे । उसी में अम्मा की यह दुर्गति हो गयी । दद्दा जी सत्यनिष्ठा का ऐसा सार्वजनिक नाटक करेंगे तो अम्मा के प्राण बच पायेंगे ?" सत्यव्रत ने रूमाल से आंखें पोंछ ली, "चाचा जी, आप ही हम लोगों की रक्षा कर सकते हैं ।"

"हूं···" मेरे मुख से निश्वास के रूप में निकला परन्तु मस्तिष्क में नौजवान के शब्द गूंज रहे थे—सत्यनिष्ठा का सार्वजनिक नाटक ! उससे पूछा, "तुम ने क्या सोचा है ?"

"मैं क्या सोच सकता हूं !" सत्यव्रत ने रुंधे हुए कण्ठ से कहा, "दद्दा जी हम लोगों की बात सुनने को तैयार नहीं हैं । हमारे सोचने से हो क्या सकता है । उन्होंने जिस प्रकार हम लोगों की बात न सुनने के लिए दूसरे कमरे में जाकर किवाड़ मूंद लिये, मेरा मन चाहता है, चाहे प्राण दे दूं, उस घर में लौट कर पांव न रखूं । मेरा सिर घूम रहा है । कुछ सोचने लायक नहीं हूं । इतना ही सोच सका कि आप के पास चलूं·····।"

ध्यान आया—लड़का कल से भूखा है, तिस पर मस्तिष्क को विक्षिप्त कर देने वाली ऐसी स्थिति । अनुरोध किया—"तुम कल से भूखे हो, लू में चल कर आये हो । जाओ भीतर जाकर हाथ-मुंह धोकर कुछ खा-पी लो । तब तक हम सोचेंगे, फिर तुम से बात कर कोई उपाय निश्चय करेंगे । कुछ तो करना ही होगा ।"

सत्यव्रत का मन कुछ भी खाने को न था । बिट्टन और उसकी मां को पुकारा और सत्यव्रत को कुछ खिला-पिला देने के लिए उनके साथ भीतर भेज दिया । स्वयं समस्या के विषय में सोचने लगा । सत्यव्रत के मुख से खिन्नता में निकल गये शब्द—सत्यनिष्ठा का सार्वजनिक नाटक—बार-बार मस्तिष्क में गूंज जाते थे । स्मृति में धुंधली-धुंधली छायायें उभरने लगीं । संत जी जिन दिनों वकालत करते थे, अन्य वकीलों की तरह काली टोपी, काली अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहनते थे । सवारी पर कचहरी जाते थे । उस समय भी उनकी सार्वजनिक सेवावृत्ति के कारण लोग-बाग उन्हें देख आदर से जयराम जी की कह देते थे । वकालत छोड़ कर वे केवल खद्दर के कुर्त्ता-धोती, चप्पल पहने बाजार में पैदल चलने लगे तो लोग उन्हें देख आदर में खड़े हो जाते । उनका वेश और अधिक संक्षिप्त हो जाने पर लोग उनके सम्मान में खड़े होकर,

सिर नवाकर प्रणाम करने लगे । सवारी पर कचहरी जाने वाले सफल वकील साहब की अपेक्षा खद्दर की चादर ओढ़े, बाज़ार में से पैदल गुजरने वाले संत जी की मुख-मुद्रा कहीं अधिक सामर्थ्य और संतोष का आभास देती थी । लोग उन्हें स्वयं के लिए और अपने परिवार के लिए जीने वाले नहीं अपितु सत्य-अहिंसा और जनसेवा के आदर्श के उपासक, विदेह त्यागी संत समझने लगे थे और संत जी का व्यवहार इन आदर्शों के सम्मुख किसी भी भावना या वस्तु की चिन्ता न करने का जान पड़ता था ।···लड़के ने क्या कहा—'सत्यनिष्ठा का सार्वजनिक नाटक !'···और उनकी पत्नी बेचारी···! सदा मौन रह कर पति के आदर्शों के लिए बलिदान होती रही और आज भी वह संत जी की दृष्टि में असत्य की अभिसंधि की अपराधिन है । वह इस अपराध के लिए जो दण्ड और यातना पा रही है, उसकी गहराई और सीमा ? इस असत्य की अभिसंधि में इस नारी का क्या स्वार्थ था ?···आदर्श और समझ का द्वंद्व विकट स्थिति उत्पन्न कर देता···'सत्यनिष्ठा का सार्वजनिक नाटक !'

सत्यव्रत लगभग बीस मिनिट में भीतर से लौट आया । उसके चेहरे से उद्विग्नता का भाव दूर न हुआ था । उससे पूछा—"कुछ सोचा ?"

"चाचा जी मैं क्या सोच सकता हूं ।" उसने उत्तर दिया, "जितना सोचता हूं, उतनी अधिक विक्षिप्ति अनुभव होती है । उससे बचने का एक ही उपाय जान पड़ता है कि उस विषय में न सोचूं और कभी घर न लौटूं ।"

"तुम्हारे घर न लौटने से तुम्हारी मां का क्या हाल होगा ?"

"चाचा जी वास्तव में चिन्ता तो उन्हीं के लिए है । प्राण देकर भी अम्मा को इस अपमान और यातना से बचा सकूं तो उसके लिए भी तैयार हूं पर कर क्या सकता हूं ? मैं अपने विवेक के विरुद्ध भी दद्दा जी जो कहें करने को तैयार हूं पर वे सुनें तब तो !"

"परन्तु मैं ही क्या कर सकूंगा ?" सत्यव्रत से पूछा, "उनका तो निश्चय है कि तुम किसी को उन्हें समझाने के लिए कहोगे तो वे निर्जल अनशन कर देंगे । इसका अर्थ है कि वे अपने निश्चय से भिन्न तर्क नहीं सुनना चाहते ।"

"ऐसा तर्क वे सुनते ही कब हैं ?" नवयुवक ने क्षोभ से कहा, "अपने निश्चय को तो वे भगवान की प्रेरणा और विश्वास कहते हैं । मन चाहता है—सत्यनिष्ठा के नाम पर इस अन्याय को, इस दुराग्रह को विफल करने के लिए प्राण दे दूं । केवल विचार आता हैं अम्मा का परन्तु सत्यनिष्ठा का वह

दुराग्रह भी अम्मा के प्राण लेगा ।"

"विफल करने का क्या अभिप्राय ?"

"मन चाहता है—आप समझेंगे मेरा दिमाग फिर गया—मैं मानता हूं, दमन के विरुद्ध ग्लानि और क्षोभ से मेरा दिमाग खराब हो सकता है परन्तु मन चाहता है कि दद्दा जी कम्पनी बाग में अनशन आरम्भ करें तो मैं बारादरी के सामने खड़े होकर, पुकार कर सब लोगों को बता दूं कि हम लोगों के साथ कैसा अन्याय हो रहा है और उनके अनशन के प्रोटेस्ट में उनके सामने कलेजे में कटार भोक कर प्राण दे दूं ।"

सत्यव्रत की बात सुन कर मेरा शरीर सिहिर उठा । लड़का कैसी व्यथा अनुभव कर रहा है और इससे अधिक इसकी असहाय मां व्याकुल होगी, परिवार के दूसरे लोग भी और संत औ अपने विचार में सत्य-अहिंसा के प्रति निष्ठा से स्वयं दारुण कष्ट सिर ले रहे हैं । उन्होंने अपने विश्वास में अहिंसा के व्रत ले स्वयं कष्ट सहन द्वारा तप का निश्चय किया है । यह मान्यताओं और दृष्टि-कोणों का कैसा विकट द्वंद्व है । सत्य और अहिंसा कितने जटिल प्रश्न हैं । मस्तिष्क में गूंज गया—'सत्यनिष्ठा का सार्वजनिक नाटक ! ' सहसा खयाल आया—संत जी इन लोगों की विकलता और व्यथा को कुछ नही समझते ।... यदि लड़का क्षोभ से सचमुच कुछ कर बैठे तो बेचारी मां का क्या होगा ?

सत्यव्रत गर्दन झुकाये दोनों हाथों के पंजे आपस में उलझाये मौन था । उसे सम्बोधन किया—"तुम अपने पिता के इस विचार से इतने खिन्न हो तो तुम्हें उनके सामने अपना विचार तो प्रकट करना चाहिये था ।"

"वे दूसरों का विचार या तर्क सुनते ही कब हैं ।" सत्यव्रत ने अपनी बात दोहराई, "आपको बता चुका हूं अम्मा, भाभी, बुआ उनके पांव पकड़ कर प्रार्थना करना चाहती थीं परन्तु उन्होंने दूसरे कमरे में जाकर किवाड़ मूंद लिये ।"

कुछ देर सोच कर सत्यव्रत ने कहा—"जो भी हो, उन्हें तुम लोगों की भावना से परिचित होना चाहिये ।

ऐसी अप्रिय स्थिति आनी नहीं चाहिये । अच्छा तुम कुछ समय विश्राम करो । सोचने के लिये कुछ समय दो । फिर तय करेंगे, क्या किया जा सकता है । लड़के को ले जाकर अपने बिस्तर पर लिटा दिया ।

बैठक में लौटा तो फिर पुस्तक पढ़ सकना संभव न था । मस्तिष्क बेचैन हो गया था—सत्य-अहिंसा को जीवन का लक्ष्य मानने का अभिप्राय क्या है ?

सत्य और अहिंसा व्यवहारों के औचित्य के सम्बन्ध में हमारी मान्यतायें या विचार ही तो हैं। इस लड़के और इस की मां के व्यवहार में अनौचित्य, स्वार्थ अथवा हिंसा की कौन भावना समझी जा सकती है ? अपने विचार और रुचि को दूसरों पर लादना, उन्हें अपने विचारों के ही अनुसार चलने के लिये विवश कर देना हिंसा नहीं है ? अपने विचारों या मान्यताओं को ही परम सत्य मान कर दूसरों के विचारों या मान्यताओं से अधिक महत्व देना, अपने आप को ही सच्चा और सही मानना, अपने अहम् या ईगो को ही महत्व देना अहंकार नहीं है ? जब मनुष्य की 'ईगो' या अहम् का महत्व ही संतोष देने लगें तो वह उस अहंकार को पूरा करने के लिये क्या नहीं कर डालेगा ? अहम् या अहंकार के नशे में, सम्मान पाने की भूख में धन-दौलत की चिन्ता नहीं रह जाती। मनुष्य अपने अहम् या अहंकार के बढ़े हुये नशे को सम्मानजनक बना लेने के लिये, उसे आध्यात्मिकता मान कर निष्ठा का नाम दे लेता है। तब निष्ठा के लिये स्त्री-पुत्र, परिवार की, यहां तक कि अपने शरीर की भी चिन्ता न करने के अहंकार से संतोष पाता है। ऐसा व्यक्ति दूसरों की यातना की ओर ध्यान कैसे दे सकेगा ?—अहम् का नशा—सम्मान का नशा !—सत्यनिष्ठा का सार्वजनिक नाटक ! सहसा सत्यव्रत को पुकार लिया—"सुनो भइया !"

मुख से पुकार निकल जाने पर ध्यान आया, यों ही पुकार लिया। क्या जल्दी थी ? शायद बेचारे को नींद आ गयी हो।

सत्यव्रत बैठक में आ गया।

"नींद आ रही हो तो जरा आराम कर लो।" उस के प्रति सहानुभूति प्रकट की।

"ऐसी मानसिक अवस्था में नींद कैसे आयगी चाचा जी !"

"अच्छा तो तुम एक पत्र लिखो अपने पिता जी के नाम। पत्र उन के हाथ में हम स्वयं देंगे। मेज़ पर कलम-कागज़ है वहीं बैठ जाओ। पत्र में सम्बोधन वैसे ही लिखो, जैसे करते आये हो, शेष हम लिखायेंगे।" सत्यव्रत को लिखाया :—

"अपना विचार आप के सम्मुख रखने का अन्य उपाय न होने के कारण इस पत्र द्वारा सूचना दे रहा हूं। आप ने मेरे और अम्मा के व्यवहार को असत्य और छलना कह हम लोगों के हृदय परिवर्त्तन के प्रयोजन से, सार्वजनिक स्थान पर मौन सहित अनशन व्रत करने का संकल्प प्रकट किया है। मैं दृढ़ निश्चय से कहता हूं कि मेरे व्यवहार में किसी स्वार्थ, लोभ अथवा छलना की भावना

या प्रयोजन नहीं था। अम्मा ने आपके अनुचित भय के कारण ही छिपा कर मुझे भोजन देने का यत्न किया। इस कार्य में उनका कोई स्वार्थ, लोभ या प्रवंचना की इच्छा न थी। मेरे और अम्मा के व्यवहार में असत्य और प्रवंचना की भावना देखना न सत्य है, न न्याय है। इस पारिवारिक मामले में यदि आप हम दोनों को घर के भीतर ही कोई दण्ड देते तो हम हृदय से स्वयं को अपराधी न मान कर भी, आपके प्रति आदर से उसे सह लेते। आप घरेलू बात को घर के भीतर ही न रख कर सार्वजनिक रूप से हमारी आत्मा की शुद्धि के लिये तप करेंगे। आप ऐसे आचरण से अपनी सत्यनिष्ठा की ख्याति और सम्मान बढ़ने की आशा करते हैं परन्तु आप जिन व्यक्तियों पर असत्य और छल का आरोप लगाकर, जिनके कल्याण के लिये तप करेंगे, आपके तप से उनका अकल्याण ही होगा। वे निरपराध होने और सदाशय से व्यवहार करने पर भी जनता द्वारा कलंकित समझे जायेंगे। वे ऐसे अपमान की अपेक्षा मृत्यु स्वीकार करना चाहेंगे। मंगलवार के दिन मैंने आपके प्रति सम्मान के कारण आपका अन्यायपूर्ण निर्णय सह लिया क्योंकि बात घर के भीतर सीमित थी। अब आपने मुझे और मेरी माता को सार्वजनिक रूप से कलंकित करने का कार्यक्रम निश्चित किया है। आपके प्रति आदर का भाव रखते हुये भी मैं यह अन्याय न सहूंगा। मैं सम्पूर्ण सम्भव उपायों से स्वयं और अपनी श्रद्धेय माता पर आने वाले कलंक का मार्जन करूंगा।

"मैंने विवश होकर संकल्प किया है कि जिस समय आप कम्पनीबाग की बारादरी में अनशन और मौन व्रत आरम्भ करेंगे, मैं अपनी माता और मुझ पर आपके अन्याय के विरोध में, पुल पर से नदी में कूद कर प्राण दे दूंगा। मेरी आत्महत्या का प्रयोजन नगर की जनता को यह बताना होगा कि मुझ पर और मेरी माता पर लगाया गया आरोप मिथ्या है। मेरा यह आत्महत्या का कार्य वास्तविक सत्य की रक्षा के लिये अहिंसात्मक होगा क्योंकि मैं आपके अन्याय के विरोध में शारीरिक शक्ति का प्रयोग नहीं करूंगा। आप सत्य-निष्ठा के सार्वजनिक नाटक द्वारा अपना अहंकार पूरा करने के लिये हमें बलि बनाकर, कलंकित करके आत्महत्या के लिये बिवश कर रहे हैं। मैं और मेरी माता यह अपमान नहीं सह सकते। जनता का भ्रम दूर करने के लिये मैंने इस पत्र की सात प्रतियां बनायी हैं। आत्महत्या करने से पूर्व मैं इस पत्र की प्रतियां नगर के अंग्रेज़ी पत्र, दोनों हिन्दी पत्रों के नाम, सुपरिन्टेन्डेन्ट

पुलिस, जिला मैजिस्ट्रेट तथा नगर के मेयर के नाम पोस्ट कर दूंगा। एक प्रति मेरे शरीर पर भी रहेगी। मैं जानता हूं, मेरी आत्महत्या का समाचार मेरी माता के प्राण ले सकता है परन्तु मैं उन्हें मिथ्या कलंक से बचा सकूंगा। मैं जानता हूं, मेरी माता मिथ्या कलंक की अपेक्षा मृत्यु ही स्वीकार करना चाहेंगी। मैं प्राण देकर जनता को और आपको भी बता दूंगा कि हमारे हृदय परिवर्तन के लिये आपका सत्यनिष्ठा का सार्वजनिक नाटक सत्याग्रह नहीं, यह वास्तव में अपने अहम् और अहंकार को संतुष्ट करने के लिये दुराग्रह है। यह हम लोगों का बिना शस्त्र प्रयोग के कत्ल (नानवायोलेंट मर्डर) है और अहिंसा की वास्तविक भावना तथा मानवता की दृष्टि से जघन्य अपराध है।

"मैं यत्न करूंगा कि इस पत्र की एक प्रति कल प्रातः से पूर्व आपको भी मिल जाये। मुझे उत्तर की आवश्यकता नहीं है। मैं कम्पनीबाग में आपके पहुंचने पर ध्यान रखूंगा। यदि आप हम लोगों को कलंकित कर हमारे प्राण लेने का अपना विचार—सत्याग्रह का संकल्प स्थगित कर देंगे तो जो भाग्य को स्वीकार होगा ! कालान्तर में आपको स्वीकार होगा तो अपनी इस धृष्टता के लिये क्षमा-याचना भी कर सकूंगा।

आपका विवश पुत्र

पत्र लिखाते समय मेरी दृष्टि सत्यव्रत के चेहरे पर थी। उसके चेहरे पर कभी तनाव आ जाता, कभी माथे पर सिकुड़न दिखायी देती, कभी रोमांच की सिहरन सी। पत्र समाप्त कर सिर झुकाये मौन रहा।

मैंने पूछ लिया—"ठीक है ?"

"अन्य उपाय भी तो नहीं।" सत्यव्रत ने स्वीकार किया।

"लिखे हुये में कुछ परिवर्तन करना चाहते हो ?"

"ऐसे ही ठीक है।"

"तो हस्ताक्षर कर दो।"

"इसकी प्रतियां बना लूं। सब पर एक साथ हस्ताक्षर कर दूंगा।"

"प्रतियां बनाने की क्या आवश्यकता है ?"

सत्यव्रत ने मेरे प्रश्न से माथा सिकोड़ कर उत्तर दिया—"हाथ से लिख देने के पश्चात बात से पीछे नहीं हटूंगा।"

"तो पिता जी से क्यों आशा करते हो कि मुख से निकले वचनों से पीछे

हट जायें ? तुम मानते आये हो कि सत्य-असत्य मुख से निकले शब्दों में नहीं, अभिप्राय में होता है। शब्दों को महत्व देकर तुम्हारा सोमवार का व्यवहार असत्य नहीं माना जाना चाहिये। तुमने यह पत्र स्वार्थ अथवा छल के प्रयोजन से नहीं लिखा है। तुम्हारे लिये इस समय केवल यही उपाय सम्भव है। देखें इस का परिणाम क्या होता है। पत्र पर हस्ताक्षर कर, लिफाफे में रख कर पेपरवेट के नीचे दबा दो। मैं पांच बजे के लगभग तुम्हारे यहां जाऊंगा। लौट कर तुम्हें समाचार दूंगा। तुम हमारे बिस्तर पर विश्राम करो।"

× × ×

संत जी के मकान में निर्जनता का सा सन्नाटा था। बैठक के किवाड़ मुंदे थे पर वे बैठक में ही थे। मेरी पुकार पर उन्होंने किवाड़ खोल दिये और गम्भीर विनय से समीप बैठ जाने का संकेत कर दिया। उन के सामने पतली पटिया पर एक पूरा लिखा फुलस्केप कागज पड़ा था। कलम भी वहीं पड़ा था और दूसरा आधे से अधिक लिखा। मुख पर चिन्ता की मुद्रा। संत जी ने मेरे आगमन के कारण की जिज्ञासा में, औपचारिक मुस्कान के यत्न से मेरी ओर देखा।

"बहुत व्यस्त जान पड़ते हैं ?" प्रसंग आरम्भ कर सकने के लिये प्रश्न किया, "क्या लिख रहे हैं।"

"एक वक्तव्य लिख रहा हूं।" संत जी ने कागज पर दृष्टि झुका कर उत्तर दिया, "कल प्रातः से सप्ताह भर कम्पनी बाग की बारादरी में रहूंगा। उतना समय अनशन और मौन रहना है। उस सम्बन्ध में जो कुछ आवश्यक हो सकता है, लिख दे रहा था।"

अनशन और मौन सहित घर से बाहर निवास की आवश्यकता का कारण पूछने पर संत जी ने कहा—"मुझे खेद है, मैं अपने परिवार के लोगों में भी सत्य के प्रति निष्ठा और विश्वास उत्पन्न करने में सफल नहीं हो सका। ऐसा मेरी ही निर्बलता के कारण है। भगवान ही मेरी इस निर्बलता को दूर कर मुझे आत्मिक शक्ति दे सकते हैं। यह प्रयत्न है अपनी आत्मा की शुद्धि के लिये और भगवान से बल प्राप्त करने के लिये।"

"आप ने परिवार के लोगों की सत्यनिष्ठा में ऐसी क्या त्रुटि देखी ?" संत जी का दृष्टिकोण जानने के लिये पूछा।

संत जी ने लिखे हुये कागजों की ओर संकेत किया—"पढ़ लो।" बहुत संक्षेप में उसी घटना का उल्लेख था जो सत्यव्रत से सुनी थी परन्तु ध्वनि और घटना की व्याख्या में अन्तर था। वक्तव्य में अनशन का कारण मौन के संकल्प की घोषणा थी। शैली पत्रों के लिये वक्तव्य की थी।

अपना दृष्टिकोण बताने के लिये कहा—"मेरे विचार में सत्यव्रत और उस की माता के व्यवहारों को सहानुभूतिजन्य निर्बलता तो कह सकते हैं परन्तु उस में दुराशय नहीं जान पड़ता!"

संत जी असहमति से गर्दन हिला कर बोले—"जो सत्य नहीं, वह असत्य है। सत्य से हीन सहानुभूति मिथ्या आचरण का बहाना मात्र होगी। सत्य की उपेक्षा या असत्य के प्रति सहिष्णुता असत्य को प्रश्रय और उत्साह देगी। ऐसी सहिष्णुता नैतिक निर्बलता मात्र है। सत्याचरण का परिणाम क्या होगा? यह चिन्ता हमारा काम नहीं। हमें भगवान का आदेश पूरा करना है, फल की चिन्ता भगवान करेंगे। फल की चिन्ता ही तो आसक्ति है।" संत जी के मुख पर मुस्कान थी परन्तु ध्वनि में रुखाई।

संत जी की रुखाई उत्साहवर्द्धक नहीं थी परन्तु उन के संकल्प के परिणाम का आभास सत्यव्रत से मिल चुका था। बात करना आवश्यक ही था।

"सत्यव्रत मेरे यहां आया था। उस की क्षुब्ध-दुस्साहसपूर्ण मुद्रा से," और संत जी के सम्मुख पड़े पत्रों की ओर संकेत कर, "आप के इस वक्तव्य से भी अनुमान है कि कम्पनी बाग में अनशन के लिये आप के संकल्प से, दृष्टिकोणों में भेद के कारण स्थिति बहुत विकट हो गयी है।" जेब से पत्र निकाल कर संत जी की ओर बढ़ा दिया, "यह पत्र शायद सत्यव्रत ने इस विकट स्थिति के प्रति अपनी ओर से चेतावनी के लिये ही दिया है। आप इसे देख लें।"

संत जी पत्र मेरे हाथ से लेकर, क्षण भर विरक्त भाव से—पत्र को पढ़ने न पढ़ने की दुविधा में रहे। फिर लिफाफा खोल कर पढ़ने लगे। चेहरे पर विरक्ति के भाव का स्थान गम्भीरता ने ले लिया। पत्र को वे ध्यान से धीमे-धीमे, शायद कुछ वाक्यों को दो-दो बार पढ़ रहे थे। आवेश या चिन्ता के कारण हाथ में कुछ कम्पन भी जान पड़ा। पत्र को समाप्त कर उसे हाथ में लिये कुछ क्षण दीवार की ओर टकटकी लगाये रहे। चेहरा तमतमा गया था। उन्होंने पत्र को एक बार और पढ़ा। मैं उन की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा में नज़र झुकाये मौन रहा।

संत जी ने पत्र हाथ से छोड़ दिया—"यह धमकी है। इट्स ब्लैक मेल (कपट है)। सत्याग्रह को क्राइम (अपराध) का रूप देने का ब्लैक मेल।"

"कैसे ?" संत जी से जिज्ञासा की।

संत जी ने पत्र मेरे सामने रख दिया—"पढ़ो !"

पत्र को ध्यान से पढ़ कर कुछ पल सोच कर कहा—"हां, धमकी माना जा सकता है परन्तु चेतावनी भी कहा जा सकता है। लेखक अपनी भावना और दृष्टिकोण से सिंसीयर (सच्चा) भी हो सकता है।"

"असत्य और सिंसीयरटी का क्या सम्बन्ध ?" संत जी ने प्रश्न किया।

"यह तो असत्य के पर्दाफाश का विरोध है। यह पाप के फल से बचने के लिये दुराग्रह और ब्लैक मेल है।"

"आपका व्रत उन लोगों के लिये तो लांछना ही होगा। वे अपने आपको लांछना के अधिकारी नहीं समझते।"

"पाप करके लांछना से भय, पाप में फंसे रहने का दुराग्रह है। पाप और असत्य से मुक्ति के लिये पहला कदम विनय से अपने अपराध को स्वीकार कर उसके लिये खेद अनुभव करना है। असत्याचरण को छिपा कर सच्चे बनने का दम्भ तो स्वयं पाप है। यह आधुनिक भौतिक प्रवृत्ति का प्रभाव है जो मिथ्या आदर को लक्ष्य मानती है। यह क्राइम-नावेल्स (जासूसी-उपन्यासों) और सिनेमा की संस्कृति है। इट्स ब्लैक मेल, यह कपट है।"

संत जी के असंतोष की चिन्ता के बावजूद कहना पड़ा—"ऐसा पत्र लिखा जाने की स्थिति किस प्रकार उत्पन्न हुई ? इस पत्र को एक आशंका या धमकी की प्रतिक्रिया भी समझा जा सकता है।"

"नहीं-नहीं, यह सत्य से भय है। असत्याचरण पर पर्दा बनाये रखने का प्रयत्न है। मिथ्या अभिमान का दुराग्रह है।" संत जी का स्वर तीखा हो गया। उन्होंने क्षोभ वश करने के लिये नेत्र मूंद लिये।

संत जी का अंतिम निश्चय जानने की प्रतीक्षा में उनके सामने कई मिनिट मौन बैठा रहा। मन ही मन संत जी के क्षोभ और सत्यव्रत और उसकी माता के क्षोभ और व्याकुलता की तुलना कर सोच रहा था—क्या मैं असत्य और अन्याय का पक्ष ले रहा हूं···क्या मैं सचमुच ब्लैक मेल कर रहा हूं ?

संत जी ने कुछ मिनिट पश्चात नेत्र खोल मेरी ओर देखा—"जब असत्य का अति प्राबल्य होकर धर्म का ह्रास हो जाता है तब स्वयं भगवान की शक्ति

ही सत्य और धर्म की रक्षा कर सकती है। ऐसे धर्म संकट में विश्वासी स्वयं निर्णय का अहंकार छोड़ कर केवल भगवान से प्रार्थना का और उसकी प्रेरणा का ही भरोसा कर सकता है। सत्यनिष्ठ का एकमात्र आश्रय भगवत ध्यान ही है।"

स्वीकार किया—"आप का वचन सत्य है।" और आश्वासन पाया कि संत जी परिवार के हृदय परिवर्तन के लिये सार्वजनिक स्थान में अनशन और मौन व्रत द्वारा प्रायश्चित न कर केवल भगवान से सहायता की प्रार्थना का ही भरोसा करेंगे।

खच्चर और आदमी

पूरण के जीवन के २३ वर्ष दिल्ली और उस के आस-पास ही बीते थे। कभी पहाड़ पर जाने का अवसर नहीं हुआ था। हिमपात देख सकने लिये उत्कट उत्सुकता से पहली बार शिमला गया था। वहां कभी-कभी अच्छी बरफ पड़ जाती है। दो दिन, रात में अनेक बार जोर का हिमपात हो गया। डेढ़-दो फुट बरफ गिर जाने पर हिमपात रुक कर हवा चलने लगी। पूरण का मन हिम दर्शन से अघा गया। वह बरफ में जूता धंसा कर चलने, बरफ हाथों में उठा उस के गोले बना कर फेंकने के कौतूहल के स्थान पर शीत से सिहरन अनुभव करने लगा। शीत, चमड़े के कोट को भी बेंध कर उसे कंपा देता था। उसे बरफ में घूमने की इच्छा न रही।

भार्गव ने मित्र के स्वागत में कमरा गरम करने के लिये बिजली के हीटर के स्थान पर दीवाल में बनी पुराने ढंग की अंगीठी में काठ के कुंदे सुलगवा दिये थे। खूब अच्छी लपटें उठ रही थीं। भार्गव ने सोफा अंगीठी के समीप खींच लिया। दोनों सोफे पर बैठ गये और सिगरेट सुलगा लिये। सन्मुख आग थी, शरीर पर पर्याप्त कपड़ा था परन्तु बर्फानी वायु में घूमते रहने से पूरण के शरीर में इतनी सर्दी रच गयी थी कि आध घंटे तक आग के सामने बैठ लेने पर भी उसे झुरझरी अनुभव हो जाती और मुख से निकल जाता—ओफ भयंकर सर्दी है!

"यहां सर्दी है? अच्छा-भला गरम कमरा है।" भार्गव ने उपेक्षा से कह दिया, "तुम्हें अभ्यास नहीं है वर्ना शिमला में अधिक सर्दी नहीं होती।"

भार्गव गत पांच वर्षों से हेमन्त शिमला में ही बिताता है। वह भूगर्भ सर्वेक्षण विभाग के खनिज अनुसंधान दल में है। इस दल के लोगों को वर्ष में छः मास समुद्र तल से बीस हजार फुट ऊंचे हिमरुद्ध स्थानों में खोज कार्य करना होता है। केवल सात हजार फुट ऊंचे शिमला की सर्दी उन के लिये क्या चीज!

"माई गाड !" पूरण ने आतंक प्रकट किया, "यह कम सर्दी है; और कितनी सर्दी होगी ?" पूरण ने सर्दी के सम्बन्ध में भार्गव के विचित्र अनुभव सुनने के लिये उसे उकसाया कि उन अनुभवों की तुलना में स्वयं अनुभव होती सर्दी को भुला सके ।

भार्गव ने मित्र का अभिप्राय समझ कर उत्तर दिया—"कष्टदाय सर्दी तो होती है, बारह हजार फुट से ऊपर । जहां धरती पर और चारों ओर मोटी बर्फ हो, कई दिन तक धूप न मिले, विशेषकर जब गरमी पा सकने के लिये ईंधन भी पास न हो ; न खाना गरम किया जा सके, न गरम काफी-चाय मिल सके । ऐसे समय प्राण आग की चिंगारी और लौ के लिये तरस जाते हैं ।"

"क्या तुम्हें भी कभी ऐसा अनुभव हुआ ?" पूरण के नेत्र उत्सुकता से फैल गये ।

"केवल एक बार, सोलह दिन तक ।"

"प्लीज ! कैसे, जरूर बताओ !"

भार्गव ने सुविधा के लिये पूरण की ओर करवट ले ली—"हमारे दल के उस अनुभव का कुछ समाचार तो पत्रों में प्रकाशित हुआ था । अरे वही लाहौल घाटी की दुर्घटना । अप्रत्याशित या मौसम के अनुमान की रिपोर्ट के विरुद्ध भयंकर हिमपात घाटी के ऊपरी भाग में हो गया और हम लोग फंस गये । उस प्रदेश के लिये चौबीस घंटे में होने वाले मौसम की सूचना ब्राडकास्ट की जाती है मनाली से । मनाली है समुद्र तल से पांच-छः हजार फुट की ऊंचाई पर । हमें विश्लेषण के लिये नमूने लेने थे बारह हजार फुट की ऊंचाई पर, चट्टानें फोड़ कर । हमारा कूच का पड़ाव दस हजार फुट पर था । लक्ष्य तक रास्ता पांच मील से अधिक न था । सदा बर्फ से ढकी रहने वाली चौदह हजार फुट ऊंची एक धार को ही लांघना था । धार को लांघने के लिये केवल एक दर्रा है वह भी तेरह हजार फुट पर । दर्रे के उस ओर हजार फुट नीचे एक बहुत छोटा-सा मैदान है । वहां आयुध-महत्व (Strategic Importance) के एक पदार्थ के अनुमान में बरमा चलाने का बिचार था···।"

"वह पदार्थ मिला ?" पूरण टोक बैठा ।

"नहीं, तीन वर्ष पूर्व वहां फिर यत्न किया गया था । वह अनुमान ठीक न था ।" भार्गव सिगरेट सुलगाने लगा ।

"खैर, अपना अनुभव सुनाओ ।"

भार्गव लम्बा कश लेकर बोला—"विचार था, धार के पार मैदान में सात-आठ दिन से अधिक ठहरना आवश्यक न होगा। कूच-पड़ाव के लोगों ने सलाह दी—खच्चरों के लिये ऊपर घास-दाना ले जाना जरूर नहीं है। वहां इस मौसम में पशुओं के लिये बहुत अच्छी पौष्टिक घास मिलेगी। जरूरी समझें तो थोड़ा बहुत दाना उन के लिये ले जाइये। विकट चढ़ाइयों पर बोझा ढोने से बचने का प्रलोभन भी रहता है।

"नये स्थान पर सूर्यास्त से जितना पूर्व पहुंचा जा सके अच्छा रहता है। सूर्य का प्रकाश रहते स्थान को समझने और अनुकूल बना लेने में सुविधा रहती है। ग्रुप लीडर ने तड़के कुछ अंधेरा रहते नाश्ता दिलवा दिया। यंत्र, राशन और तम्बू छः खच्चरों पर लदवा दिये और हम दस शेरपाओं को साथ ले, पौ फटते-फटते चल पड़े। खच्चरों के लिये दाना नौ-दस बजे तक मिलना था। शेरपाओं का मुखिया अपने शेष नौ आदमियों और छः खच्चरों के साथ पीछे रह गया कि दाना मिल जाने पर बड़ी बरमा मशीन और मशीनों के लिये ईंधन लेकर हमारे पीछे आ जायेगा।

"हमने धार का सकरा दर्रा साढ़े ग्यारह बजे पार कर लिया। मौसम फोर कास्ट ने उत्तर-पश्चिम में आकाश साफ रहने का आश्वासन दिया था। स्थानीय लोगों को भी दो-तीन सप्ताह तक बर्फ-पानी की आशंका नहीं थी परन्तु हम दर्रे से मैदान में उतर ही पाये थे कि उत्तर-पश्चिम की ओर से घने, काले बादल उमड़ने लगे। बादलों ने इतना ही अवसर दिया कि हम मैदान के किनारे ऊंचा स्थान देख कर तम्बू लगा लें। यदि हम खूंटे गाड़ने और तम्बू खड़े करने में शेरपाओं का हाथ न बंटाते तो तम्बू भी न लग पाते। हमारे तम्बू लग ही पाये थे कि भयंकर कड़क से ओला बरसने लगा। ओले इतनी तेजी से और इतने परिणाम में गिरे कि दस मिनट में घनी, ऊंची घास से ढका मैदान चांदी का विराट थाल सा बन गया। ओले धार की ढलवानों और ऊपर दर्रे में भी गिरे थे। हमें आशंका हुई, ओले यदि धार के उस ओर न गिरे होंगे तो भी पीछे आते शेरपाओं और खच्चरों के लिए दर्रा लांघना और मैदान तक उतरना दुस्साध्य हो गया होगा। कुछ-कुछ देर रुक कर ओलों की उससे भी भारी-भारी बौछारें संध्या तक आती रहीं। समझ लिया, मेट शेष पार्टी को लेकर दर्रे तक आया भी होगा तो उसे लौट जाना पड़ा होगा।

नीचे पड़ाव के लोगों की सूचना गलत नहीं थीं। हमारे पहुंचने पर मैदान

में बढ़िया घास मौजूद थी परन्तु अब उसे ओलों की छ-सात इंच मोटी तह ने दबा लिया था। हम चिन्तित थे, भूखे खच्चरों को क्या दें!

सूर्यास्त के घंटे भर बाद हम लोगों ने जमा हुआ पैराफीन जलाकर राशन गरम किया और खाकर सर्दी से बचने के लिये रजाई के थैलों में हो गये। भूखे खच्चर अपने तम्बू में हिनहिना कर चारा मांग रहे थे। रात तम्बू पर बार-बार आहट से बरफ गिरने का अनुमान होता रहा। सुबह उठ कर देखा, रात में काफी बर्फ पड़ती रही थी। मैदान में बल्लम गाड़ने पर डेढ़ फुट तक बर्फ में धंस जाता था। मैदान के चारों ओर ढलवानों पर भी काफी बर्फ जम गयी थी। धार के दर्रे में भी काफी बर्फ भर गयी थी। खच्चर अपने तम्बू में और अधिक हिनहिना कर भूख और सर्दी की शिकायत कर रहे थे। उनके तम्बू में कुछ गरमी कर सकने के लिये तेल और स्टोव भी नहीं थे। वह सुविधा तो हमारे लिए भी न थी। ईंधन बाद में आने वाला था। बारह हजार फुट ऊंचे धरातल पर ईंधन के लायक झाड़ियां या वृक्ष तो होते नहीं। आकाश में अब भी बर्फानी बादल अटे हुये थे। ऐसी स्थिति में क्या आशा होती कि शेरपाओं का मुखिया दाना और ईंधन लेकर आ जायेगा! दोपहर से पहले ही फिर बरफ गिरने लगी और कम-ज्यादा सांझ तक गिरती रही। हर समय काटने के लिए कुछ चट्टानों पर से बर्फ गिरा, उन्हें खुर्च कर देखते रहे परन्तु काम तो कुछ हो नहीं सकता था। केवल सर्दी ही अनुभव कर रहे थे। खच्चरों की दयनीय अवस्था, उनकी चारा मांगती कातर दृष्टि, अपना असामर्थ्य मन को और खिन्न कर रहा था।

रात में और बरफ पड़ी। दूसरे दिन सुबह भी बार-बार बरफ गिरती रही। मैदान की अपेक्षा धार की ऊंचाई पर और दर्रे में अधिक बरफ गिर रही थी। दर्रा चौड़े भाले की नोक की तरह ऊपर से खुला और नीचे तंग था। स्पष्ट दिखाई दे रहा था कि दर्रे के भीतर की ढलवानों से कच्ची बरफ के तोंदे फिसल-फिसल कर दर्रे को भरते जा रहे थे। तीसरे दिन रजाई के थैले से निकलने को मन न चाहता था। उस ऊंचाई पर विरल वायु में मामूली हरकत से भी सांस फूलने लगती है। शरीर की शक्ति संजोये रखने का ध्यान रखना होता है।

तीसरी रात भी बरफ पड़ी और सुबह भी बादल बने रहे। सर्दी का क्या कहना! थर्मामीटर शून्य से पैंतालीस अंश नीचे था। पूरे कपड़े पहने, रजाई

के थैलोंमें लिपट, कुछ पढ़ कर समय बिताने का यत्न किया परन्तु नाक बहते जा रहे थे। सर्दी से कनपटियों में दर्द जान पड़ रहा था। आशंका हो गयी कि नीचे से सहायता आने की बात तो दूर, लौट जाने की राह भी कम से कम चार-पांच दिन तक नहीं मिलेगी। खच्चरों की हिनहिनाहट सुनाई नहीं पड़ रही थी। उनकी गर्दनें लटक गयी थीं। अधिक सर्दी में शारीरिक शक्ति के लिए अधिक खूराक और कैलोरीज की आवश्यकता होती है और खच्चर बेचारे, कड़े परिश्रम के बाद से बिलकुल निराहार थे। उस समय खच्चरों के तम्बू से विचित्र समाचार मिला कि एक खच्चर भूख से व्याकुल होकर दूसरे खच्चरों को काटने के लिए झपट रहा था और उसने अपने समीप के खच्चर का कान तोड़ कर खा लिया था।

"विचित्र !" पूरण ने टोका, "घोड़े-खच्चरों के मांसाहार की बात तो कभी नहीं सुनी !"

"कह तो रहा हूं विचित्र समाचार मिला !" भार्गव अवसर पाकर नया सिगरेट सुलगाने लगा।

पूरण हंस दिया—"अरे आप लोग अपने राशन में से ही बेचारे खच्चरों को कुछ दे देते !"

"यानी, हमारी अपेक्षा खच्चरों की जान बहुमूल्य थी और हम सब के आठ दिन के राशन से एक खच्चर का पेट एक बार भी न भरता !"

"मैंने केवल हंसी में कहा।"

हां, पांचवीं रात बरफ नहीं पड़ी परन्तु अगले दिन भी घने बादल रहने के कारण बरफ गिरने की सम्भावना बनी थी। नाश्ते के समय हम लोग विचार कर रहे थे कि ऐसी परिस्थिति में प्राण-रक्षा के लिए क्या किया जा सकता है। खच्चरों के तम्बू के एक शेरपा ने आकर परेशानी प्रकट की—कनकटा खच्चर लड़खड़ा कर गिर पड़ा है। खच्चर अभी ज़िन्दा है और उसका कान खा जाने वाला खच्चर उसे खाने के लिए लपक रहा है। उसे रोकते हैं तो वह हमें काटता है।

"हम लोग विस्मय से देखने के लिए गये। शेरपा की बात ठीक थी। मांसाहारी बन जाने वाला खच्चर गिर जाने वाले खच्चर को खाने का यत्न कर रहा था। सोचा, जो खच्चर गिर पड़ा है उसे तो बचाया नहीं जा सकता, यदि दूसरा उससे अपना पेट भर सकता है तो भर ले।

ग्रुप लीडर ने खच्चर के मांसाहारी बन जाने के प्रसंग पर विद्रूप करके कहा—"कहीं हम लोगों की भी ऐसी ही अवस्था न हो जाये !"

साधारण नियम से हम लोगों के पास आवश्यकता से दूना राशन रहता है। हमारा राशन स्टाक सोलह दिन चल सकता था। ग्रुप लीडर ने आदेश दे दिया कि राशन इस तरह खर्च किया जाये कि कम से कम चार दिन और चल सके। पैराफीन भी कम जलाया जाये, सांझ को चाय बन्द कर दी जाये। इस खयाल से कि हमें कम खाने का ध्यान रखना है, सर्दी और निर्बलता अधिक अनुभव होने लगी।

छटे दिन धूप निकल आयी, परन्तु दर्रा बरफ भर जाने के कारण अलंघ्य हो चुका था। एक दिन बाद एक और खच्चर भूख से लड़खड़ा कर गिर पड़ा। मांसाहारी बन जाने वाला खच्चर तब तक पहले खच्चर को समाप्त कर चुका था। वह मांसाहारी पशुओं—शेर-चीतों की तरह खच्चर के शरीर के पंजर को तोड़ नहीं सका था, ऊपर से जितना मांस खा सकता था, खा गया था। उसके लिए और आहार हो गया। आठवें दिन से शेष खच्चर गिरने लगे। मांसाहार अपना लेने वाला खच्चर उनसे निर्वाह करता रहा। खच्चरों के शरीर भूख से सूख गये थे, उनमें मांस ही कितना था !

"छः दिन अच्छी धूप लग जाने से ढालों पर जगह-जगह बरफ पिघल गयी थी, परन्तु दर्रा अलंघ्य ही था और मैदान पर भी बरफ की चार-इंच गहरी तह मौजूद थी। दर्रे के दाहिने कुछ अंतर पर स्थान शेष धार से नीचा था। हमलोग दूरबीनें लेकर उस स्थान के विषय में विचार कर रहे थे, इस बरफ की थाली में भूख से जम जाने की अपेक्षा मुक्ति के प्रयत्न में मरना ही बेहतर होगा।

"गत संध्या ओले का बादल फिर दिखाई दिया था। गनीमत कि तेज हवा ने उसे उड़ा दिया परन्तु ऐसा बादल किसी समय भी बरस सकता था। मौसम के विचार से ऐसी आशंका प्रतिदिन बढ़ रही थी। उससे पहले एक वर्ष पूर्व हम सत्रह हजार फुट की ऊंचाई तक चढ़ चुके थे। धार चौदह हजार फुट ही थी, वह दुर्लंघ्य हो गयी थी। बरफ ताजी और कच्ची होने से स्थानों पर खच्चर या दूसरा पशु नहीं चढ़ सकता। वहां गति संभव है तो केवल मनुष्य की क्योंकि मनुष्य केवल शारीरिक शक्ति से काम नहीं लेता, उसकी सामर्थ्य सोच सकने में भी होती है।

"हम लोगों ने ग्रुप लीडर के सामने प्रस्ताव रखा—संभव है कूच-पड़ाव में लोगों ने हमें समाप्त मान कर हमारी खोज व्यर्थ समझ ली हो। यहां खच्चरों की तरह भूखे मर जाने से बेहतर है कि हम लोगों से दो आदमी दर्रे के समीप नीचे स्थान से धार लांघने का यत्न करें और उस ओर समाचार दें। वह स्थान सवा मील से दूर न होगा। यदि हम लोग तीन घंटे धार के उस पार न हो सके तो लौट आयेंगे।

"ग्रुप लीडर ने प्रस्ताव स्वीकार न किया। वह इतने यत्न से सधाये हुये और विशेषज्ञ लोगों को यथासंभव जोखिम में डालने के लिये तैयार न था। उसने हमें सुझाव दिया कि इस काम के लिये शेरपा लोगों को, मुंह मांगे इनाम का आश्वासन देकर उत्साहित किया जाये। शेरपा हमें साथ लिये बिना चलने को तैयार न थे।

"ग्यारहवें दिन नया संकट खड़ा हो गया। मांसाहारी खच्चर मुर्दा खच्चरों को समाप्त कर चुका था। घास पर अब भी इंच-डेढ़ इंच कड़ी बरफ की तह थी। मांसाहारी बन गया खच्चर अब भूख से व्याकुल होकर आदमियों पर झपट रहा था। शेरपाओं ने कहा कि उसे गोली मार दी जाये वर्ना वह आदमियों को गिरा कर खा जायेगा।

"ग्रुप लीडर ने खच्चर को गोली मारने की अनुमति न दे आदेश दिया—इसके चारों सुमों में बंधन डाल दिये जायं। यह लगातार खाता रहा है। अभी तीन-चार दिन मरेगा नहीं। धूप रही तो इसे दो दिन बाद घास मिल जायेगी।" उसने हमें अपना अभिप्राय बताया—पीछे पड़ाव पर बड़ा मेट बहुत भरोसे लायक आदमी है। संभव है, उसे ख्याल हो कि हमारे पास अभी चार दिन का राशन है इसलिये अपने आदमियों को कच्ची बरफ में धंसाने का जोखिम टाल रहा हो। चार दिन की धूप बहुत सहायक हो सकती है। वह उस दिन दोपहर बाद तक न आया तो हम आगामी प्रातः भगवान भरोसे धार को लांघने का यत्न करेंगे ही परन्तु हो सकता है इस बीच फिर मौसम धोखा दे जाये, हमें दो-तीन या चार दिन यहां रुकना पड़ जाये। उस समय यह खच्चर हमारा भोजन बनेगा। इसका मांस पकाने के लिये काफी ईंधन की जरूरत होगी। उसके लिये पैरा-फीन बचाओ, डब्बों में बन्द राशन गरम करने की जरूरत नहीं। केवल नाश्ते के समय एक-एक प्याला काफी बनाया जाये।

"धूप दो दिन खूब अच्छी पड़ी। मैदान में जगह-जगह घास प्रकट हो गयी।

खच्चर को घास की ओर छोड़ दिया गया। वह लपक-लपक कर घास खा रहा था और हम टीनों में जमा राशन निगल-निगल कर झुरझुरी अनुभव कर रहे थे। प्रत्येक दिन पहाड़ हो रहा था। मन चाहता था, धार को लांघने के प्रयत्न में ही प्राण चले जायें और ऐसी यातना समाप्त हो।

"सोलहवें दिन हम लोगों ने ग्यारह बजे से ही धार की ओर दूरबीनें लगा लीं। दर्रा अब भी अलंघ्य था। हम लोग उसके समीप धार पर नीचे स्थान की ओर ही देख रहे थे। तीन भी बज गये तो ग्रुप लीडर ने निराशा से कह दिया—"उन लोगों ने अनुमान कर लिया है कि हम बरफ में दब चुके हैं। वह कुछ मिनट दूरबीन से धार की ओर देखता रहा और फिर बोला, "लेकिन मेरा अनुरोध है कि दो दिन और ठहरा जाये। उन लोगों की प्रतीक्षा में नहीं, केवल इसलिये कि दो दिन की धूप से" "उसने धार पर एक स्थान की ओर संकेत किया, "वहां से जाने में जोखिम कम हो जायेगी।"

"हमारे लिये उस सर्दी और यातना में दो और दिन बिताने की कल्पना असह्य थी। दो साथी उतावले हो गये—"हम यहां खायेंगे क्या? दो दिन भूखे रह कर उस धार पर चढ़ सकने का सामर्थ्य रहेगा?"

"इसी समय के लिये तो वह खच्चर है।" ग्रुप लीडर ने उत्तर दिया, "अब उसका क्षण आ गया है। चलो उसे समाप्त कर दें ताकि प्रकाश रहते उसे उधेड़ा जा सके।" वह रिवाल्वर लेने के लिये तम्बू के भीतर गया और हमें धार की रीढ़ पर, दर्रे के पास दो शेरपा दिखाई दे गये।

पूरण किलक उठा—"ह्वाट लक! खच्चर बच गया!"

"लक क्या?" भार्गव ने पूछा, "शेष खच्चरों को क्या हमने गोली मार दी थी? उस खच्चर ने स्थिति के लिये प्रयत्न किया, बच गया।"

"परन्तु खच्चर मांसाहारी नहीं होते।" पूरण ने आग्रह किया, "यह बात अप्राकृतिक थी।"

"अप्राकृतिक?" भार्गव के माथे पर तेवर आ गये, "क्या सृष्टि के आरम्भ से जीवों के रूप और व्यवहार सदा एक से ही रहे हैं? जीव अस्तित्व-रक्षा के लिये शाकाहारी से मांसाहारी और मांसाहारी से शाकाहारी बनते रहे हैं। इतना ही नहीं, वे जलचर से थलचर और नभचर तक बन गये। जो जीव स्थिति-अनुकूल व्यवहार नहीं अपना सके उनका अस्तित्व मिट गया। उनके प्रस्तर पंजर संग्रहालयों मे मिलेंगे। जीवों का अस्तित्व-रक्षा के प्रयोजन से

स्थिति अनुकूल आचरण भी प्राकृतिक है।"

"तब भी बात विचित्र जरूर है।"

"विचित्र बात सुनना चाहते हो! वह भी सुनाता हूं।" भार्गव नया सिगरेट सुलगा कर सुनाने लगा!

"वह मेरे ट्रेनिंग पीरियड की बात है। हम लोग "कंचन' की धारों में थे। उस समय भी हमारा कैम्प दस हजार फुट पर ही था। हमारा ट्रेनर एक जर्मन था। हम लोग प्रातः माउंटेनियरिंग के लिये कैम्प से साढ़े तीन हजार फुट और ऊपर गये थे। लौटते समय भारी वर्षा होने लगी। उस वर्षा में बल्लमों और कुदालों की सहायता से दो-दो, चार-चार इंच करके उतरना पड़ा। सूर्यास्त के बाद ही कैम्प में पहुंच सके। वर्षा ऐसी थी कि मोटे ऊनी वाटर प्रूफ कपड़े होने पर भी त्वचा के साथ पानी भर जाता था। पेटी खींचने पर पानी पतलून में बह जाता था। सर्दी ऐसी कि जबड़े ऐंठ जाने से मुंह से बोल न निकले। उंगलियां नीली पड़ कर ऐंठ गयी थीं। जूतों के फीते काट कर उन्हें उतार सके।

"कैम्प में लौटने पर ट्रेनर ने आर्डर किया—सब लोग पूरे कपड़े उतार कर परों की रजाइयों के थैलों में घुस कर चार-चार घूंट ब्रांडी निगल लें और शरीर को हाथों से जितना रगड़ा जा सके मल लें।

"हमारे ग्रुप में दक्षिण के एक कर्मकाण्डनिष्ठ परम वैष्णव ब्राह्मण भी थे। दूसरों के सामने निर्वस्त्र हो जाना उन्हें स्वीकार न था। वे भीगी बनियान, कमीज और पतलून पहने ही रजाई के थैले में घुसे। परम वैष्णव व्यक्ति थे, ब्रांडी कैसे पी लेते। ब्रांडी भी उन्होंने नहीं पी। जाड़े के मारे चेहरा भी थैले में कर लिया। दूसरे दिन सबके उठ जाने पर वे नहीं उठे। पुकारने पर भी उनकी नींद नहीं टूटी तो काफी का प्याला देने के लिये थैले का मुंह खोल कर देखा गया, उनका मुंह खुला था।

"वैष्णव विष्णुलोक सिधार गये?"

"सीधे।" भार्गव ने सिगरेट से लम्बा कश खींच लिया।

"खैर!" पूरण ने विद्रूप से सरहना की, "अपना धर्म विश्वास तो नहीं छोड़ा।"

भार्गव का, ओठों की ओर सिगरेट ले जाता हाथ रुक गया—"धर्म विश्वास क्या, संस्कार कहो ! देख लो, खच्चर ने स्थिति समझ कर आत्म-रक्षा कर ली और संस्कारों से बंधा मनुष्य स्थिति अनुकूल आचरण नहीं कर सका।"

फरवरी १९६५